वर्ष ६, अंक १०

श्रीकृष्णाय नमः

आषाढ पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

श्रीराम-प्रतिज्ञा

निसिचर-हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ़ पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक १० पूर्ण संख्या ७०

वेदोपदेश

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते॥ १॥

हे प्राण शब्द-रूपी तेरे लिये नमस्कार, गरजने वाले बादल रूपी! तेरे लिये नमस्कार। हे प्राण! बिजुली-रूपी तुझको नमस्कार, हे प्राण! वर्षा-रूपी तेरे लिये नमस्कार है॥ १॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवता स्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेश शचीभिः॥ २॥

देवताओं की इन्द्रियों के बीच में रहा हुवा एक वार पैदा हुवा फिर गर्भ में प्रत्येक पदार्थ के मध्य घूमता है। वह निश्चय से फिर उत्पन्न होता है। वह पिता भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के सब शक्तियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट हुवा॥ २॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत कदाचन

हंस-प्राण जल से ऊपर उठता हुवा एक पांव को नहीं खैंचता हे प्रिय यदि वह उसे खैंचेगा तो कोई भी नहीं आज और नहीं कल होगा रात्री नहीं और न दिन होगा। इसलिये प्राण का कभी भी उच्छेद न हो ॥ ३ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विस्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तुते ॥ ४ ॥

हे प्राण! जो सबको जन्म देने वाले हलचल करने वाले इस सब विश्व का स्वामी है। दूसरों में तत्काल धनुष चलाने वाले उसे तुम्हारे लिये नमन है। आलस्य रहित ब्रह्म के कारण धैर्यशाली प्राण मुझे सहायक हो ॥ ४ ॥

प्राण मा मर्त्या वृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपांगर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ ५ ॥

हे प्राण! मेरे से न पीछे हटो मेरे से विभक्त न होओ। पानी के गर्भ के समान जिन्दा रहते हो। हे प्राण तुझको मेरे में बांधता हूं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

कथा जगत्सिंह जी की

राजा आनन्दसिंह के पुत्र राजा जगत्सिंह भगवद्भक्ति और साधुसेवा के देश में राजाओं के भी राजा थे। भगवत् सेवा में उनकी ऐसी प्रीति थी कि कभी उसमें अन्तर नहीं पड़ता था। वे जितना प्रकट में धन ऐश्वर्य रखते थे उतना ही भक्ति का ऐश्वर्य मन में रखते थे। इन्होंने लक्ष्मी नारायण को अपनी सेवा से वशीभूत करलिया था और इनका ऐसा निर्मल यश जगत् में फैला कि असंख्य विमुख लोग भगवत् संमुख हो गये। इनका प्रताप ऐसा था कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार ध्वंस होजाता है, उसी प्रकार उनके शत्रु नष्ट होगये। इनकी आज्ञा दृढ ऐसी थी कि प्रजा का धन,

सम्पत्ति और आनन्द की वृद्धि हो और कीसी के पराक्रम की अवज्ञा न हो। लक्ष्मीनारायण की सेवा में ऐसी प्रीति थी कि जब कभी राजधानी से बाहर जाते, तो भगवत् की पालकी सब के आगे चलती और आप नौकर के सदृश पीछे होते। जब कभी शत्रु से युद्ध का संयोग होता, तो लड़ाई और सेना के अधिपति और मालिक भगवत् होते और आप सिपाही के सदृश सेना का काम करते। जितनी टहल प्रभात से अगले प्रभात तक भगवत् सेवा की होती, सब अपने हाथों से करते, यहां तक कि भगवत् सेवा के लिये जलका घड़ा अपने शिरपर धरकर लाते।

उदयपुर के राना यशवन्तसिंह और जयपुर के टिकैत जयसिंह ने राजा जगत्सिंह की भक्ति और सेवा का जो वृत्तान्त सुना, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और अपना भगवत् में प्रेम न विचार कर बहुत लज्जित हुए। एक समय राजा जयसिंह और राना यशवन्तसिंह को जल लाने के समय राजा जगत्सिंह के दर्शन की अभिलाषा हुई। दोनों दो तीन घड़ी रात रहे मार्ग में जा बैठे और उनको इस समाज से दर्शन हुआ कि सौ दोसौ सिपाही वीर हथियार बन्द, सैकड़ों खिदमतगार और गुलाम साथ हैं और आप राजा अपने शिरपर भगवत् सेवा का जल सुवर्ण के कलश में लिये हुए जिह्वापर नाम और मनमें भगवत् स्वरूप, तिलक और माला धारण किये हुए नंगे पांव जा रहे हैं। दोनों राजाओं का धैर्य जाता रहा और वे साष्टांग दंडवत् करके चरणों में पड़े और फिर हाथ जोड़कर विनय करने लगे कि जीवन का सुख और फल भगवत् ने कृपा करके आपको ही दिया है, क्योंकि भक्ति का सुख और राज्य तो संसार में पाया है और परलोक में भगवत् का परमधाम और स्वरूप प्राप्त होगा। राजा जगत्सिंह राजा जयसिंह की ओर देखकर बोले कि मैं किसी योग्य नहीं हूं, मुझसे क्या भगवत् सेवा और टहल हो सक्ती है आपकी बहिन अवश्य भगवद्भक्त हैं कि उनके सत्संग और कृपा से थोड़ीसी मेरे चित्त की वृत्ति भी भगवत् सेवा की ओर लगने लगी है। राजा जयसिंह अपनी बहिन दीपकुंवरि की भक्ति का प्रताप सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और किसी कारण से इन्होंने अपनी बहिन की जागीर जो छीन ली थी, वह छोड़ दी और दिव्य वस्त्रादिक भेजकर अपने अपराध की क्षमा कराया। दीपकुंवरी ने क्षमा की और अपने भाई को भगवद्भक्ति और साधुसेवा का उपदेश लिखभेजा। हे मंसाराम! श्रीकृष्ण स्वामी, कृपासिंधु, महाराज हम मतिमंद कलियुगी जीवों पर ऐसी दया दृष्टि करें कि अहंकारादिक नानाप्रकार की दुर्मति को छोड़ कर आपके चरणकमल की शरण लें।

कुं-सेवा निष्ठा में हुए, जगत्सिंह शिर मौर।
जो सेवा उनने करी, नहीं कर सके और॥
नहीं कर सके और, पांव नंगे जल लाते।
भगवत् सेवा छोड़ अन्य में मन न लगाते॥
भोला! भगवद्भक्ति, चाख लीन्ही जिन मेवा।
सब मेवायें छोड़, करें नित भगवत् सेवा॥

कथा कुंवरकिशोर की।

राजा खेमाल के पौत्र कुंवरकिशोर भगवद्भक्ति में दृढ, प्रेम की मूर्ति, बुद्धिमान, आनंददर्शन, उदार, वीर, प्रसन्न वदन और मधुरभाषी थे। इन्होंने जगत् में भगवद्भक्ति का प्रचार करके छोटे बड़ों को अपनी सौम्य प्रकृति के अधीन कर लिया था, अर्थात् सब धन्य २ कहते थे। अवस्था थोड़ी थी परंन्तु भगवद्भक्ति में जवानों और वृद्धों से बढ़ बढ कर थे। इन्होंने अपने पिता और पितामह की

शिक्षा को ऐसा निबाहा कि मरण पर्यन्त उसमें भेद न पड़ा बात यह थी कि जिस समय इनके पितामह राजा खेहाल देह त्यागने लगे, तो उनकी आंखों में जल भर आया और बड़े शोचयुक्त हुए। बेटों ने विनय किया कि खजाना, राज्य और सामान इत्यादि भगवत् का दिया हुआ है, जो आप चाहें, दान करें, शोच करने की क्या बात है? राजा ने कहा कि मुझे इन बातों में से किसी का शोच नहीं है, क्योंकि जो दान और सुयश का काम मुझे करना उचित था, वह सब मैं ने करदिया। दो बातों का शोक है, एक यह कि कभी भगवत् सेवा के लिये कलश जल का अपने शिरपर लाकर मैं ने भगवत् सेवा नहीं की, दूसरा यह कि नूपुर बांधकर भगवत् के सामने नृत्य नहीं किया। राजाके बेटे यह बात सुन कर चुप होगये, कुँवरकिशोर राजा के पोते ने खड़े होकर हाथ जोड़कर विनय किया कि इस दास को आज्ञा हो, जबतक जीऊंगा तब तक आज्ञा का पालन करूंगा, कभी व्यवधान न पड़ेगा। राजा खेमाल ने उसी दशा में अतिहर्ष और आनन्द से उठकर पोते को छाती से लगाया और दोनों सेवाओं की आज्ञा देकर परम धाम की राह ली। कुँवरकिशोर ने उस आज्ञा को ऐसा निबाहा कि किसी को लिखने और वर्णन करने का सामर्थ नहीं है, तन, मन और इन्द्रियाँ सब भगवत् में लगादिये संसारभर में यश फैलगया।

कु–पोते नृप खेमाल के, कुंवर किशोर उदार।
कीन्हा भगवद्भक्ति का, जगके मांहि प्रचार॥
जगके मांहि प्रचार, भक्ति भगवत् का कीन्हा।
बाबा का उपदेश, पाय हरि में मन दीन्हा॥
भोला! भगवद्भक्त, विश्व उपकारक होते।
तर जाते हैं आप, तारते नाती पोते॥

कथा नर हरियानन्द की।

नर हरियानन्द जी ऐसे परम भगवद्भक्त थे कि इनका रातदिन सिवाय भगवत् सेवा के अन्य कुछ काम ही नहीं था और वे सदा अनुक्षण भगवत् सेवा की सामग्री की तैयारी में ही लगे रहते थे। एक दिन रसोई का चौका आदि सब बना कर भगवत के लिये रसोई करने लगे। घर में लकड़ी न मिली और पानी बड़ी धूम धाम से बरस रहा था, इसलिये बाज़ार में भी लकड़ियां न मीलीं। भगवत् सेवा सर्वोपरि है, सब देवता भी इसमें एकमत हैं, इसलिये रसोई में विलम्ब करना उचित न समझ कर यह निकट के दुर्गा के मन्दिर में गये और छत्र उतारने लगे। दुर्गा महारानी भगवत् सेवा के इस दृढ़ विश्वास से प्रसन्न हुईं और कहने लगीं कि स्थान को तोड़ो फोड़ो मत, लकड़ी तुम्हारे घर पहुंचती रहेंगी, नरहरियानन्द जी घर लोट आये और लकड़ियां नित्य पहुंचने लगीं। पड़ोस की स्त्री ने यह भेद जान कर अपने पुरुष से कहा कि नरहरियानन्द जी ने दुर्गा को डरपा कर नित्य लकड़ियों का पहुंचाना ठहरा लिया है, यदि तुम भी ऐसा ही करो, तो परिश्रम बिना नित्य लकड़ियाँ आजाया करें। वह निर्बुद्धि दुर्गा के स्थान पर पहुंचा और ज्योंही उस ने छत्र पर फावड़ा मारा, त्योंही दुर्गामहारनी ने सिर नीचे और पांव ऊपर करके उसको लटका दिया। जब मरने लगा, तो पुकारा कि हे दुर्गामहारानी! हे माता! अब की बार प्राण छोड़ दो, फिर ऐसा अपराध नहीं करूंगा। दुर्गा ने कहा कि यदि मेरे बदले नरहरियानन्द के घर लकड़ियां पहुंचा आया करे, तो तेरे प्राण बच सकते हैं, नहीं तो इसी घड़ी तेरे प्राण लेती हूं। मूढ़बुद्धि ने लाचार होकर दुर्गा

की आज्ञा अंगीकार करली। दुर्गा के शिर से बेगार छुटी। भगवत् सेवा की महिमा हे मंसाराम ! जितनी वर्णनकी जाय, उतनी थोड़ी है, शेष और शारदा से भीवर्णन नहीं हो सक्ती। सच कहा है:-

कुं-भगवत् सेवा से अधिक, श्रेष्ठ कार्य नहीं कोय।
भगवत् सेवा के किये सकल विश्व वश होय॥
सकल विश्व वश होय, देव देवी अरुदानव।
भगवत् वश हों आप, तुच्छ फिर क्या है मानव॥
भोला ! भगवत् सत्य, विश्व मृग तृष्णा जलवत्।
मिथ्या भोगन त्याग, पकड़ले सच्चे भगवत्॥

कथा प्रेम निधि की।

प्रेम निधि जी जाति के ब्राह्मण आगरे के रहने वाले, भीतर बाहर से शुद्ध, सुन्दर रूप, मधुर बोलने वाले, नवधा भक्ति के भक्तों को आनन्द के देने वाले थे, गृह में रह कर भी गृहस्थी के किसी कार्य में बद्ध नहीं थे, शुद्ध स्वभाव, उदार थे, भगवद्भक्तों के सत्संग में नियम वाले और दयालु थे। सच तो यह है कि प्रेमनिधि सचमुच प्रेमनिधि थे। यह सर्वदा चार घड़ी रात रहे उठकर भगवत् सेवा में लगते और भगवत् सेवा के निमित्त यमुना जल अपने शिर पर रखकर लाते थे। एकवार वर्षाऋतु में कहीं कहीं २ राह में बहुत कीच थी। विचार करने लगे कि दिन में जायें तो दिन निकलते ही राह में लोगों की भीड़ होगी, किसी से जल छू जायगा और रातको जांय तो कहीं अन्धेरे में गिर न पड़ें और घट न फूट जाय। अन्त में किसी का स्पर्श अयोग्य विचार कर पानी बरसते में अंधेरे में ही कलश शिर पर रख कर चले। ज्योंही द्वार से बाहर पैर रक्खा कि भक्तवत्सल, करुणाकर महाराज उनकी सेवा से प्रसन्न होकर बारह वर्ष के लड़के के रूप से मशाल लेकर प्रेमनिधि जी के आगे आगे हो लिये। प्रेमनिधि जी ने उस मशालची का रूप माधुरी, मन मोहन हरा रंग, आँखे अलसीली, घुन्घवारी अलकें, लाल चीरा बांधे हुए, मशालचियों के समान कमरकसे हुए, हाथ में मशाल लिये जो देखा तो भीतर और बाहर उजाला होगया, वे उसके रूप पर आसक्त और मोहित होगये, उसके देखने की आशासे जिधर को वह चाला, चलने लगे। यमुना जी पर पहुंच कर प्रेमनिधि जी स्नान करके यमुना जल का कलशा भरके शिर पर रख कर चले, घर आये, जल का कलशा भगवत् मन्दिर में रख कर तुरन्त उस मशालची को ढूंढने लगे, कहीं पता न लगा। प्रेमनिधि जी समझ गये कि ऐसे रूप वाला सिवाय उस चित्त चोर व्रजकिशोर के और कौन हो सक्ता है कि एक निगाह में अपना दास करले ! उस परम दयालु करुणाकर जैसा और कौन स्वामी है कि जो सेवक के थोड़े से परिश्रम के लिये अपनी ईश्वरता को, कि जिसका वेद और ब्रह्माजी भी पार नहीं पाते, छोड़ कर तुरन्त भक्त का दुःख दूर करने को आ पहुंचे। ऐसा विचार कर प्रेमनिधि जी अधिक मन लगा कर भगवत् सेवा और भजन में लग गये।

प्रथम भजन करते, फिर भगवत् सेवा से छुट्टी पाते, तो भगवच्चरित्रों का कीर्त्तन किया करते थे और बड़े प्रेम से कथा कहा करते थे। श्रोता बहुत आते थे। कथा के पीछे गान और कीर्त्तन का समाज होता था और सब भगवद्भक्त भगवत् के भाव और भक्ति में पूर्ण हो जाते थे। दुष्ट और पापात्मा लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन किसी पशुन ने बादशाह से चुगली की कि प्रेमनिधि नगर की स्त्रियों को कथा के मिस से अपने घर पर जमा

करता है और यह अनर्थ का कारण है। बादशाह ने चोबदार प्रेमनिधि के लेने को भेजा, उसने चलने के लिये इतनी जल्दी की कि प्रेमनिधि भगवत् को जल पिलाना भूल गये, बादशाह के संमुख पहुंचे और जब बादशाह ने वृत्तान्त पूछा तो प्रेमनिधि ने सत्य २ कह दिया कि भगवत् कथा का कीर्त्तन किया करता हूं, उस समय चाहें स्त्रियां आवें चाहे पुरुष उनकी रोक नहीं हो सकी, क्योंकि यह सत्पुरुषों का आचरण नहीं है और स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखना पड़ा पाप है। बादशाह ने कहा कि तुम्हारी टोली के लोगों ने कुछ खोटी बातें कही हैं, इसलिये हम वास्तव वृत्तान्त समझना चाहते हैं, इस बात की पूछ ताछ करेंगे। यह कह कर बादशाह प्रेमनिधि को नजरबन्द करके महल में चला गया। रातको जब बादशाह सो रहा था, तो भगवत् ने उसके इष्टदेव के रूपसे आकर सवप्न में उससे कहा कि हमको जल की तृषा लगी है। बादशाह ने कहा कि जल के भरे घड़े रक्खे हुए हैं; पान कर लीजिये भगवान् ने क्रोध करके कहा कि तेरे घड़ों का पानी कौन पीता है? यह कह कर एक लात मारी और कहा कि हमारी बात नहीं सुनता। बादशाह ने कहा कि आप जिसको आज्ञा दें, वह पानी ले आये। भगवत् ने कहा कि हमारा जो पानी पिलाने वाला है, उसको तूनें कैद कर लिया है, पानी कौन पिलावे बादशाह की आंख खुल गयीं, उसने बड़ी मर्याद के साथ प्रेमनिधि जी को बुलाया, चरणों में शिर रख कर अपराध क्षमा कराया और कहा कि आप जल्द जाँय और जो तृषा की भी तृषा बुझाने वाला है, उसको आप के बिना तृषा लगी है, उसको पानी पिला कर उसकी तृषा बुझाओ और माल, आप को जो चाहिये आप की भेट करूं। भगवद्भक्तों को सिवाय भगवत् के अनित्य पदार्थों की चाह नहीं होती, प्रेमनिधि जी ने कुछ न लिया और वहां से चले आये। बादशाह ने मशालची साथ भेज कर उन्हें उनके घर पहुंचा दिया। आते ही प्रेमनिधि जी ने भगवत् को जल अर्पण किया और भगवत् की तृषा मिट गयी! वाह! भक्तवत्सलता!

कुं–पावन गाथा प्रेमनिधि, पढ़िये सहित विचार।
प्रेम बिना रीझे नहीं, नागर नन्द कुमार॥
नागर नन्द कुमार, प्रेम वश सब कुछ करते।
लेते हाथ मशाल, हृदय उजयारा करते॥
आप्त काम, निष्काम, भक्त पालक जन भावन।
भोला! भक्त हेतु, चरित करते अति पावन॥

कथा जयमल जी की।

जयमल जी मीरथ के राजा परम भगवद्भक्त थे। कोई २ उनको मीरां बाई जी का छोटा भाई कहते हैं। यह दश घड़ी दिन चढ़े तक भगवत् की सेवा पूजा में लगे रहते थे और इनकी यह आज्ञा थी कि सेवा के समय कोई मनुष्य पास न आवे, यदि आवेगा, तो बध के योग्य होगा। अभिप्राय यह था कि चित्त की वृत्ति दूसरी तरफ न जाय। किसी सजातीय वैरी को यह समाचार पहुंचे और वह जो समय राजा की सेवा पूजा का था, उसी समय बहुत सी सेना लेकर चढ़ आया। जब उसके चढ़ आने की चिल्ल पुकार नगर में पहुंची तो राजा के भय से कोई राजा से कहने को न गया। राजा की माता ने जाकर सब वृत्तान्त राजा को सुनाया। राजा ने उत्तर दिया कि आप सुचित्त रहें, भगवत् सब अच्छा करेंगे। ऐसा कह कर राजा आप सेवा में सावधान बने रहे और किंचित् भी सोच विचार नहीं किया।

शत्रु सूधन महाराज जो सर्व काल अपने

भक्तों के सहाय के लिये शास्त्र बांधे और कमर कसे रहते हैं, राजा के घोड़े पर चढ़ कर शत्रु की सेना में पहुंचे और एक पल में सबों का ध्वंस कर दिया राजा जयमल जी भगवत् सेवा से निवृत्त होकर शत्रु से युद्ध करने की तैयारी करने लगे, तो क्या देखते हैं कि घोड़ा पसीने में तर हुआ खड़ा है। ऐसा देख कर वे बड़े आश्चर्य में पड़े परन्तु जल्दी के कारण कुछ विचार नहीं किया, दूसरे घोड़े पर सवार होकर, सेना लेकर शत्रु के संमुख पहुंचे। क्या देखते हैं कि शत्रु धरनी पर पड़ा हुआ विकल हो रहा है। उसने राजा जयमल से पूछा कि तुम्हारी सेना में वह श्याम स्वरूप परम अनूप सिपाही कौन है, जिसने अकेले आकर मेरी सारी सेना को मार डाला और मेरा मन अपने साथ ले गया। उस शत्रु ने सब चरित्र भगवत् का जानकर निश्चय किया और भगवद्भक्ति अंगीकार करके वह कृतार्थ हो गया।

राजा जयमल जी के मन में ग्रीष्म ऋतु में यह बात आयी कि भगवत् तो नीचे मन्दिर में कि जहाँ पवन का तनिक भी प्रवेश नहीं होता, वहां शयन करें और मैं अटारी पर हवादार मकानों में सोऊं, यह बड़े शोक की बात है। ऐसा विचार राजा ने एक अतिविचित्र तिमहला बंगला तैयार करवाया और उसको फर्श, परदे, छत्त और चाँदनी इत्यादि से सजाया कमखाब की चांदनी में मक्कीश और मोतियों की झालर लगवाई जिस में स्वर्णतारी का काम था। एक सोने चांदी का पलंग तोशक, चादर और तकिये आदि से सजा कर उसमें बिछाया और सब सामान रात के शयन का, जैसे मिठाई, पानदान, अतरदान, उगालदान इत्यादि रख कर भगवत् को मानसी ध्यान से उसमें शयन कराया और आप हथियार लेकर चौकी और पहिरा देने के लिये बंगले के चारों ओर फिरते हुये भगवद्रूप के ध्यान में मग्न होते रहे। नित्य बंगले की सजावट और सब सेवा अपने हाथ से किया करते थे किसी सेवक को उस काम और सेवामें कुछ करने नहीं देते थे। भगवत् ने सेवा में राजा की अत्यन्त प्रीति और स्नेह देख कर अपने वचन के अनुसार, जैसा कि गीता में लिखा है कि जो मेरे भक्त जिस प्रकार मेरा सेवन करते हैं, उसी प्रकार मैं उनको अंगीकार करता हूं, उस सेवा को ऐसा अंगीकार किया कि प्रतिदिन प्रभात को मिठाई, पान, अतर और पानी आदि के खर्च होने के चिह्न, दन्तवन करने का निर्देश और उगालदान में उगाल होने का भाव, ये सब राजा को अच्छे प्रकार से मालूम हुआ करते और राजा उस भगवत्कृपा के परम प्रेम के समुद्र में गोते लगाया करते थे। कुछ दिन जब इसी प्रकार बीते और राजा का महल में जाना न हुआ, तो रानी के मन में यह आया कि राजा न मालूम किसी को उस बंगले में बुलाता है, ऐसा विचार कर भेद के बूझने के हेतु रानी ने ऊपर चढ़कर जो बंगले को देखा, तो एक लड़का किशोर परम शोभायान, श्याम सुन्दर स्वरूप पीताम्बर पहिने हुए शयन में पाया प्रभात होते ही यह वृत्तान्त रानी ने राजा से कहा। राजा ने यह बात सुन कर यद्यपि रानी पर कुछ क्रोध किया परन्तु भीतर मन में यह विचार किया कि यह स्त्री परम बड़भागिनी हैं, जो इसको भगवत् का दर्शन हुआ। सच है :-

कु-निष्फल, निर्गुन, शान्त, सम, अच्युत निष्क्रिय एक।
सो ही अनेक भक्त हित, धारत रूप अनेक॥
धारत रूप अनेक, भक्तवत्सल अघ भंजन।
सच्चित् परमानन्द, मोक्षदा देव निरंजन॥

भोला ! जैसा भाव, होय निश्चय तैसा फल।
हुए देवकी पुत्र, कृष्ण शाश्वत अज निष्कल ॥

कथा आशकरण की।

आशकरण नरवरगढ के राजा, महाराज भीमसिंह के पुत्र जाति के कछवाह, स्वामी कील्ह जी के शिष्य, धर्मात्मा, परम भागवत, गुणवान, बुद्धिमान, मधुर बोलने वाले, शूर, उदार, दृढ़चित्त, साधु सेवी, श्रीकृष्ण स्वामी और श्रीरघुनन्दन महाराज के नियम वाले थे अर्थात् दोनों को एक रूप जानते थे। दश घड़ी दिन चढ़े तक भगवत् की सेवा और पूजा अत्यन्त प्रेम से करते थे और द्वारपालों को आज्ञा थी कि कोई मनुष्य उस समय सामने न आने पावे और न किसी मामले का संदेशा लावे। संयोग वश एक दिन बादशाह की सवारी आयी और बादशाह ने किसी कार्य के लिये शीघ्र उनको बुलाया। बादशाही सिपाही जो आये, तो किसी ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया और न राजा तक वृत्तांत पहुंचाया। सिपाहियों ने सब बात बादशाह के सामने जाकर कह दीं। बादशाह ने क्रोध करके फौज भेजी परन्तु राजा तक कोई न गया और न किसी को बादशाह की फौज का कुछ भय हुआ। सेनापति ने बादशाह को लिख भेजा कि फौज के आने पर भी कोई राजा तक खबर नहीं पहुंचाता, जो आज्ञा हो, तो युद्ध आरंभ किया जाय। यह बात सुन कर बादशाह अपने आप आया और दरबानों ने केवल एक बादशाह को भीतर जाने दिया। बादशाह ने जाकर देखा, तो आशकरण जी सेवा पूजन करके भगवत् के सामने दण्डवत् कर रहे हैं। बादशाह देर तक खड़ा हुआ देखता रहा, और अन्त में उसने राजा के पांव में तलवार मारी, उससे एड़ी कट गयी परन्तु राजा को चेत न हुआ और न घाव का भान हुआ, क्योंकि मन भगवद्रूप में तदाकार हो रहा था और जिधर मन न हो, उधर के सुख दुःख का भाव नहीं होता, भगवत् का वचन है कि, जिन लोगों का मन मेरी कथा और चरित्रों में नहीं लगता, उनको सुख दुःख मालूम होते हैं। राजा दण्डवत् करने के पीछे मन्दिर के द्वार पर चिलमन डालकर बाहर आये और बादशाह को देख कर बादशाही रीति के अनुसार उनसे मिले। बादशाह यह सब वृत्तांत देख कर और राजा के विश्वास और सच्चे प्रेम को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, उसने लज्जित होकर अपना अपराध क्षमा कराया और राजा की बड़ी प्रतिष्ठा करके सब राजाओं में शिरोमणी समझा। राजा जब परम धाम को गये तो बादशाह ने सुन कर बड़ा शोच किया और श्रीमोहन जी के मन्दिर में जहाँ राजा सेवा करता था, उसकी सेवा और राग भोग के लिये कई गांव जागीर के बंधान दिये, जो अब तक माफ हैं।

कुं०—मन ही विषयाकार हो, मन ही ब्रह्माकार।
मन के जीते जीत हैं, मन के हारे हार ॥
मन के हारे हार, हारते विषयी कामी।
जीते हैं हरि भक्त, ईश पद रत निष्कामी ॥
भोला ! काम न आवें, पुत्र, दारा या धन ही।
मन को करले शुद्ध, श्रेय कारक है मन ही ॥

बालब्रह्मचारी श्रीकृष्ण

उपरोक्त विषय के विवेचन करने के पूर्व यदि ब्रह्मचर्य के विषय में कुछ वर्णन किया जाय तो कदाचित अनुचित् नहीं होगा। इन दिनों ब्रह्मचर्य के नाम से लोग चौंक पड़ते हैं और इसकी चर्चा करना भी पसन्द नहीं करते। इसका कारण यही जान पड़ता है कि लोगों के अन्दर ब्रह्मचर्य का प्रायः अभाव है। वे इसे कोई आवश्यक धर्म नहीं समझते। परन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो चारों आश्रमों में यह पहला श्रेष्ठ आश्रम है जिस पर सारे जीवन का सुख-दुःख निर्भर करता है। ब्रह्मचर्य भविष्य जीवन की नींव है और इस नींव पर जो इमारत खड़ी होती है वह यदि कमजोर नींव पर खड़ी हुई तो इमारत शीघ्र ही तहस नहस हो जाती है। यही कारण है कि हमारे ऋषि-मुनि-तथा पूर्वजों ने ब्रह्मचर्य पर इतना ज़ोर दिया है।

आज भी ब्रह्मचर्य ही के कारण बड़े आदर तथा गौरव के साथ बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह महावीर, अर्जुन तथा मातृ भक्त लक्ष्मण जी का नाम लेते हैं और उनका चरित्र पढ़ अपने को कृत्य २ मानते हैं। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि हम सब कुछ समझ बूझ कर भी इस अलौकिक शक्ति की प्राप्ति की ओर से उदासीन रहते हैं। इसका फल भी बहुत तुरन्त मिलता है। समूचा जीवन रोते झींकते बीतता है और भार-स्वरूप हो जाता है। यदि किसी बालक ने इस ओर ध्यान भी दिया तो उनके अभिभावक तथा माता पिता उसे उल्लू बनाने लगते हैं और उसे विवाह करने के लिये विवश करते हैं। इसका जो परिणाम होता है वह किसी से छिपा नहीं। इन होनहार बालकों का गला घोंट दिया जाता है और उनके जीवन की लहलहाती बेल सूख जाती है। माता-पिता कभी २ बालकों को ऐसी उलट-पुलट की बातों में फंसा देते हैं कि बालक समझ जाते हैं कि ये अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पालन करेंगे। उनके माता पिता उन्हें समझाते हैं केवल विवाह कर लेने से क्या होगा। तुम विवाह करलो फिर जब तुम्हारी इच्छा होगी वह तुम्हारे घर आवेगी। किन्तु विवाह होने के बाद ही वे रक्षक भक्षक बन जाते हैं और उस निर्दोष तथा अबोध बालक को ब्रह्मचर्य खण्डन करने के लिये विवश कर देते हैं।

मेरे क्षुद्र विचार से यदि ऐसी अनुचित आज्ञाओं का उल्लंघन कर दिया जाय तो कोई दोष नहीं। जब बालक ब्रह्मचर्य रक्षा की महिमा तथा उससे होने वाले अमूल्य लाभ को भली भांति समझता है और उसके माता पिता भी जानबूझ कर उसे धधकती हुई आग में डालना चाहते हैं तो ऐसी अवस्था में उनकी इस अनुचित आज्ञा का यदि पालन नहीं किया जाय तो हानि नहीं मालूम होती। अभी हाल ही की बात है। लेखक एक ऐसे विद्यार्थी को जानता है जिसकी आयु लगभग १६ वर्ष की है। उसके बार २ नाहीं करने पर भी उसके भाई तथा अन्यान्य सम्बन्धियों ने उसे विवाह करने के लिये विवश किया। यहां तक कि उसके पढ़ने का खर्च भी बन्द कर देने की धमकी दी किन्तु उस वीर बालक ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया और बीस वर्ष के पहले विवाह करने के लिये राजी न हुआ। उसका खर्च बन्द कर दिया और उसके सम्बन्धियों ने उसे इतना तंग किया कि उसे विवश हो घर से भाग जाना पड़ा। कोई भी विचारवान पुरुष इसे बुरा नहीं कह सकता। मेरा तो खयाल है कि यदि इसी प्रकार हमारे

नवयुवकों तथा विद्यार्थियों का ब्रह्मचर्यव्रत पालन की ओर ध्यान हो जाय तो फिर उनके अन्दर उसी शक्ति का संचार हो जाय जैसी हमारे पूर्वजों की थी। हमारा बल, बुद्धि स्मरण शक्ति और तेज देख कर संसार चकित हो जाये और हम अपनी ब्रह्मचर्य-शक्ति का चमत्कार दिखा दें।

कुछ लोग भगवान् कृष्ण पर अनेक लाँछन लगाते हैं और उनके बाल ब्रह्मचारी होने में अनेक शंकायें करते हैं किन्तु यदि वे गंभीरता तथा सूक्ष्मता से विचार करें तो उन्हें समझ में आजाय कि उनकी शंकाय कितनी निर्मूल हैं। गोपियों के यहां माखन चुरा कर उन्होंने जो प्रेम की शिक्षा दी है वैसी शिक्षा शायद ही कहीं मिले। गोपियों का चीर हरण कर उस खिलाड़ी मनमोहन प्यारे ने उन्हें यह शिक्षा दी कि नग्न स्नान करना उचित नहीं क्योंकि यह शास्त्र तथा लोक दोनों दृष्टि से अनुचित है और उन्हें दिखा दिया कि जो लोग स्त्रियों के अङ्ग प्रत्यंगों की सुन्दरता पर मोहित होते हैं वे मूर्ख ही नहीं बल्कि महामूर्ख और कामांध हैं। इसी प्रकार से मुरली मनोहर श्रीकृष्ण कन्हैया की एक २ लीला गूढ़ रहस्यों से भरी पड़ी है। कोई उस प्रभु का अनन्य भक्त ही उसे परख सकता है और तर्क वितर्क करने वाले चौरासी लाख योनियों में भटकते ही रह जाते हैं। किसी कवि ने क्या ही ठीक कहा है:-

फिलासफी के बहस के अन्दर खुदा मिलता नहीं।
डोर को सुलझा रहे हैं और सिरा मिलता नहीं॥

एक समय व्रज-वनिताओं की यह इच्छा हुई कि अपने हृदयेश वंशीधर को भोजन करायें। बस गोपियों ने खूब अच्छा २ पकवान तैयार किया और सबकी सब भगवान श्रीकृष्ण के पास पहुंची और हाथ जोड़ कहने लगीं 'हे प्यारे मोहन! हमारी प्रबलेच्छा है कि आप हमारी इस क्षुद्र कामना को पूर्ण करें और हमारे इस भोजन को स्वीकार कर हमारे जीवन को सार्थक करें।" भगवान ने कहा 'हे व्रजाङ्गनाओ? तुम्हारा कल्याण हो मुझे इस समय भोजन की इच्छा नहीं। तुम इन सामग्रियों को यमुना के उस ओर महर्षि दुर्वासा को अर्पण करो।" गोपियों को यह सुन बड़ा कष्ट हुआ पर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। वे थोड़ी दूर चल कर लौट आईं और भगवान से बोलीं-"हे प्राणाधार! यमुना तो लबालब भरी हैं उस ओर कैसे जायें।" श्रीकृष्ण बोले-'जाओ यमुना से कह दो कि यदि श्री कृष्ण बाल ब्रह्मचारी है तो मार्ग देदे।" गोपियाँ यह सुन खिलखिला कर हंस पड़ी। उन्होंने सोचा कि जो श्रीकृष्ण प्रति दि हमारे साथ विहार करते हैं भला वह बाल ब्रह्मचारी कैसे? किन्तु उन्हें श्रीकृष्ण पर इतनी श्रद्धा थी कि वे यमुनातट पर जा श्रीकृष्ण की आज्ञा सुना दी। बस, यमुना का जल फट गया और वे बिना भीगे उस पार चली गईं और भोजन-सामग्री तपस्वी दुर्वासा को अर्पण किया। ऋषि देखते २ चट कर गये और गोपियों को अनेकानेक धन्यवाद दे जाने की आज्ञा दी। उन्होंने पीछे फिर कर देखा तो यमुना को लबालब पाया। वे चुपचाप खड़ी रहीं। दुर्वासा ऋषि के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि यमुना से पार कैसे उतरें। उन्होंने उत्तर दिया-"जैसे तुम बाल ब्रह्मचारी श्रीकृष्ण के नाम पर यहां आईं उसी प्रकार यमुना से कह दो कि यदि दुर्वासा सदा निराहारी है तो मार्ग दे दे।" गोपियों ने आश्चर्य से पूछा 'हे ऋषिराज! जो श्रीकृष्ण हम गोपियों के साथ विहार करते हैं वह बालब्रह्मचारी कैसे? और आप जो हमारी सब सामग्री खाने पर भी डकार तक नहीं ली वह निराहारी कैसे?" दुर्वासा ने

कहा–हे गोपांगाओं भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। उनकी कोई भी इच्छा नहीं। उन्हें विषयों से बिलकुल निरिच्छा है। ऐसी दशा में वह तुम्हारे साथ विहार करते हुये भी ब्रह्मचारी ही नहीं बल्कि बाल ब्रह्मचारी हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं। मुझे भी भोजन की इच्छा नहीं। मैं नित्य तृप्त हूं, मैं यह भी नहीं जानता कि मैंने तुम्हारे पकवानों को खाया या नहीं इसीलिये मैं सदा निराहारी हूं।"

गोपियां यह सुन बड़ी प्रसन्न हुईं। उनकी सारी शंकायें दूर होगईं और नित्य प्रति उनका विशुद्ध प्रेम श्रीकृष्ण में बढ़ने लगा।

(ले० प्रेम पथ पथिक)

यक्ष और धर्मराज के प्रश्नोत्तर

[ले० श्री गोपाल प्रसाद शर्मा]

एक दिन एक ब्राह्मण की अग्नि प्रज्वलित करने की अरणी और मथन करने का दंड एक हिरण अपने सींग में फंसा कर भाग गया। ब्राह्मण ने अपना दुःख धर्मराज से जाकर कहा। धर्मराज अपने चारों भाइयों के साथ हिरण की खोज में वन को गये। वहाँ भ्रमण करते ? उन्हें बड़ी प्यास लगी सहदेव ने एक वृक्ष पर चढ़ कर देखा तो उन्हें कुछ दूर एक सरोवर दिखाई दिया इसलिये वे जल लेने को गये। सरोवर पर एक यक्ष रहता था। सहदेव को देख यक्ष ने कहा बिना मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये यदि जल लोगे तो मूर्छित हो जाओगे। सहदेव न माना। जल का स्पर्श किया और वे मूर्छित होगये। इसी प्रकार क्रम से नकुल, भीम और अर्जुन भी आये और यक्ष का कहना न मानने से मूर्छित हो गये अन्त में धर्मराज युधिष्ठर आये और अपने भाइयों को मूर्छित देख बड़े व्याकुल हुये। यक्ष ने उनकी यह दशा देख कहा कि मेरी आज्ञा न मानने का ही यह फल है आप यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे तो आप के भाई चैतन्य हो जायेंगे और सब मिल कर आप आनन्द से जल पान कर सकेंगे। धर्मराज ने उसका कहना स्वीकार किया और यक्ष के प्रश्न करने पर क्रम से उत्तर देने लगे।

(१) यक्ष ने पूछा–ब्राह्मणों का देवत्व क्या है ? सद्धर्म क्या है ? मानुषी भाव क्या है ? और असदाचरण किसे कहते हैं ?

धर्मराज ने उत्तर दिया–वेदाभ्यास यही ब्राह्मण का देवत्व है। तप यही सद्धर्म है। मरण यही मानुषी भाव है और पर निंदा यही असदाचरण है।

(२) प्रश्न–इसी प्रकार क्षत्रियों के विषय में कहिये।

उत्तर–अस्त्र धारण करना क्षत्रियों का क्षत्रियत्व है। यज्ञ सद्धर्म है। भय मानुषी भाव है और शरणागत का त्याग करना असदाचरण है।

(३) प्रश्न–बीज बोने वाले के लिये श्रेष्ठ क्या है ? संग्रह करने वालों के लिये इष्ट क्या है ? प्रतिष्ठा चाहने वालों के लिये उत्तम क्या है ? प्रसव करने वालों को क्या अच्छा जान पड़ता है ?

उत्तर–वृष्टि, बीज, गायें पुत्र।

(४) इन्द्रियों के विषयों को अनुभव करता

हुवा, धनी कहाता हुवा, बुद्धिमानों की न्यांई लोगों में पूज्य, सर्वमान्य, ऐसा पुरुष जीता हुवा भी नहीं जीता। वह कौन है ?

उत्तर–देवता, अतिथि, सेवक, पितृगण और आप स्वयं इन पांचों में से जो किसी को भी दान नहीं देता और न भोजन कराता है यही कृपण जीता हुवा भी मरा है।

(५) प्रश्न–भूमि से भारी कौन ? आकाश से ऊँचा कौन ? वायु से अधिक वेग वाला कौन ? त्रण से तुच्छ कौन ?

उत्तर–भूमिसे भारी माता, आकाश से ऊंचा पिता, वायु से अधिक गमन करने वाला मन, त्रण से भी तुच्छ तजने योग्य चिन्ता।

(५) प्रश्न–सोये हुये भी आंखें बन्द नहीं करता वह कौन ? जन्म होते हुये भी जो नहीं हिलता डुलता वह कौन ? हृदय हीन कौन ? वेग से बढ़े वह कौन ?

उत्तर–मछली, अण्डा, पाषाण, नदी।

(७) प्रश्न–प्रवासी का मित्र कौन ? गृहस्थ का मित्र कौन ? रोगी का मित्र कौन ? मरने वाले का मित्र कौन ?

उत्तर–साथी, भार्या, वैद्य, दान।

(८) प्रश्न–सर्व भूतों का अतिथि कौन ? सनातन धर्म क्या है ? अमृत क्या ? जगत् क्या ?

उत्तर–अग्नि, गाय के दूध रूपी सोमरस से होता हुवा हवन, यही मोक्षदाता होने से अमृत, वायु ही सर्व जगत्।

(९) प्रश्न–दूकल्ला कौन फिरता है, जन्म के पीछे पुनः २ कौन जन्मता है, हिमकी औषधि क्या है ? बीज बोने का बढ़ा स्थान क्या है ?

उत्तर–सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पृथ्वी।

(१०) प्रश्न धर्मका, यशका, स्वर्ग का और सुख का एक २ स्थान क्या है ?

उत्तर–चातुर्य, दान, सत्य, शील।

(११) प्रश्न–मनुष्य की आत्मा कौन ? दैवका दिया हुवा मित्र कौन ? जगत् का जीवनाधार क्या ? आश्रय कौन ?

उत्तर–पुत्र, भार्या, मेघ, दान।

(१२) प्रश्न–धन के साधन में, धनमें, लाभ में और सुख में उत्तम क्या है ?

उत्तर–चातुर्य, विद्या, आरोग्य, संतोष।

(१३) कौनसा धर्म श्रेष्ठ है ? कौन धर्म्म सदा सदा फल देने वाला है ? किसको नियम से रखने में शोक नहीं होता ? किससे मित्रता करने पर फिर वह नहीं टूटती ?

उत्तर–अक्रोध, वेदोक्त धर्म, मन, सत्पुरुष।

(१४) क्या त्यागने से प्रिय होता है ? क्या त्यागने से शोक नहीं होता ? क्या त्यागने से संपत्ति मिलती है ? क्या त्यागने से सुखी होते हैं ?

उत्तर–अभिमान, क्रोध, कामवासना, लोभ।

(१५) प्रश्न–ब्राह्मणों को दान किस लिये देना चाहिये। नटों को किस लिये, सेवकों को किस लिये, राजाको किस लिये ?

उत्तर–धर्म्मार्थ, यशार्थ, पोषणार्थ, भयार्थ।

(१६) प्रश्न–सकल लोक किससे आवृत है ? प्रकाश किस से नहीं होता ? मित्रका क्यों त्याग होता है ? स्वर्ग किससे नहीं मिलता ?

उत्तर–अज्ञान से, तामससे, लोभसे, कुसंगसे

(१७) पुरुष मृतक कब कहा जाता है ? राज्य मृतक कब कहा जाता है ? श्राद्ध मृतक कब कहा जाता है ? यज्ञ मृतक कब कहा जाता है ?

उत्तर–दरिद्री मृतवत है, राजाके बिना राज्य मृतवत है, श्रोत्रिय ब्राह्मण के बिना श्राद्ध मृतवत है, दक्षिणा के बिना यज्ञ मृतवत है।

(१८) तप का लक्षण क्या ? दमका क्या ? सब से बड़ी क्षमा क्या ? लज्जा क्या ?

उत्तर–स्वधर्मानुसार वर्तना यही तप, मन को नियम से रखना यही दम, सुख दुःखादि द्वन्द्व सहन करना यही बड़ी क्षमा, 'अकार्य्य से दूर रहना यही बड़ी लज्जा।

(१९) प्रश्न–ज्ञान क्या ? शम क्या? दम क्या ? आर्जव क्या ?

उत्तर–तत्वार्थ जानना, चित्तकी प्रशांति, सबके सुख की इच्छा, सबके विषय अथवा सब समय समान चित्त रखना।

(२०) प्रश्न–मनुष्य का दुर्जय शत्रु कौन है ? अन्त बिना की व्याधि कौन है ? सच्चा साधु कौन है ? और असाधु कौन है ?

उत्तर–क्रोध, लोभ, सब भूतों का हित चिंतक, निर्दयी पुरुष।

(२१) मोह क्या ? मान क्या ? आलस्य क्या ? शोक क्या ?

उत्तर–धर्म मूढ़त्व, आत्माभिमान, धर्म्म क्रिया का लोप, अज्ञान।

(२२) प्रश्न–ऋषियों ने स्थैर्य्य किसे कहा है ? धैर्य्य किसे कहा है ? सच्चा स्नान क्या है ? दान क्या है ?

उत्तर–स्वधर्म स्थिरता, इन्द्रिय, मनका मल त्याग, प्राणी मात्र की रक्षा।

(२३) प्रश्न–पण्डित कौन ? नास्तिक कौन ? काम क्या ? मत्सर क्या ?

उत्तर–जो धर्म्मज्ञ वही पण्डित, जो अधर्म्मज्ञ वही नास्तिक, संसार बंधन रूपी वासना यही काम, हृदय में संताप उपजावे वही मत्सर।

(२५) प्रश्न–शुद्ध ब्राह्मण कैसे जाना जाता है ?

उत्तर–शुद्ध द्विजत्व केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से नहीं आता। इसी प्रकार वेदाभ्यास करने से भी नहीं आता किन्तु सुवृत्त, सदाचार, और इन्द्रिय निग्रह से प्राप्त होता है। जो दुर्वृत्ति हो और चाहे चतुर्वेद विदीभी हो तो उसे शूद्र से भी अधिक जानना चाहिये।

(२५) प्रश्न–प्रिय वचनवादी को क्या लाभ होता है ? विचार के काम करने वाले को क्या लाभ होता है ? बहु मित्र वाले को क्या लाभ होता है ? धर्म्म में प्रीति रखने वाले को क्या लाभ होता है ?

उत्तर–प्रिय वचनवादी सब का प्यारा होता है विचार के काम करने वाले को जय मिलती है, बहु मित्र वाला सुख से रहता है, धर्म में प्रीति रखने वाले की सद्गति होती है।

(२६) प्रश्न–आनन्द क्या है ? आश्चर्य्य क्या है ? सच्चा मार्ग क्या है ? वार्ता क्या चल रही है ?

उत्तर–पांचवें छटवें दिन भी जिसे शाक पत्र खाने को मिलता जाता है जिस पर किसी का ऋण नहीं है जिसे नित्य मार्ग नहीं चलना पड़ता उसके समान आनन्द में और कोई नहीं है। नित्य अनेक प्राणी मरकर यमलोक में जारहे हैं यह देखते हुए भी शेष सब लोग अपने को स्थिर, अमर मान रहे हैं भला इससे बढ़कर और आश्चर्य्य क्या है। तर्क करके भी कोई निर्णय को नहीं पहुंचा, श्रुतियों में भिन्नता है, ऋषियों के भी मत भिन्न २ हैं एक दूसरे से नहीं मिलते, इसी से धर्म का तत्व छिपा हुआ है इसलिये बुद्धिमानों को जिस मार्ग पर शिष्ट पुरुष चलते हैं उसी मार्ग पर चलना चाहिये। इस महा मोह रूपी कड़ाई के नीचे सूर्य्य रूपी अग्नि डालकर और रात्रि दिवस रूपी कड़छी से चला २ के काल सब भूतों को भस्म कर रहा है। सर्वत्र यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है। बस ! यह वार्ता है !

(२७) प्रश्न–सब धनका धनी कौन है ?

उत्तर–जिसके पुण्य की कीर्ति दोनों लोक में छा रही है। जिसके प्रिय अप्रिय, सुख दुख, भूत भविष्यत, सब समान हैं। उसी को सब धन का धनी जानना चाहिये।

धर्म्मराज के उत्तर सुन कर यक्ष प्रसन्न हो गया। धर्म्म राज के चारों भाई चैतन्य हो गये सब ने मिलकर आनन्द से जल पान किया। यक्षने धर्म्मराज से वरदान मांगने के लिये कहा, परोपकारी धर्म्मराज ने कहा हे यक्षराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो उन याज्ञिक ब्राह्मण की अरणी और मथनीला दीजिये। यक्षने शीघ्र वे वस्तु देकर कहा कि मैंने ही आपसे संभाषण करने के लिये ये वस्तु हरण की थी। अब आप और वरदान माँगिये। धर्म्मराज ने कहा, हे यक्षराज ! हमारे वनवास के बारह वर्ष पूरे होगये हैं अब हमें एक वर्ष अज्ञात वास करना है इसलिये आप ऐसी कृपा कीजिये कि छिपे हुए भेष में हमें कोई भी न पहचान सके। यक्ष ने तथास्तु कहके फिर कहा कि आपको वरदान देते मेरी तृप्ति नहीं होती है इसलिये आप और भी वरदान मांगिये। धर्मराज ने कहा, हे यक्षराज ! लोभ और मोह पर सदा मेरी जय बनी रहे। मैं क्रोध और दुःसाहस का परित्याग करदूं और दान तपमें सदा मेरा मन लीन बना रहे। बस ! केवल इन बातोंके अतिरिक्त मैं और कोई कामना नहीं करताहूं। यक्ष तथास्तु कहके अन्तर्ध्यान होगया। और पांचों पांडव याज्ञिक ब्राह्मण को उसकी वस्तु देकर अपने आश्रम पर आगये।

सुदामा

[ले० श्री रामलाल बरौनियाँ बी० ए०]

विघ्न विदारन विरदवर, वारन वदन विकास।
वर दै बहु बाढ़ै विशद, बानी बुद्धि प्रकाश॥

सवैया

विप्र सुदामा रहो पुर एक, लगे तन दुःख दरिद्र घनेरे।
दुर्बल सम्पति सों नहिं भेंट, बिना पट कम्पत गात सबेरे
अन्न कहूं बिन अन्न कहु, कबहूं, भखि साग रहैं दुखप्रेरे।
पै निज धर्म न छाड़हिं दम्पति, हैं हरि के पद पंकज चेरे॥

× × ×

शील सुलक्षन सुन्दर रूप, सलज्ज सुबुद्धि सबै गुन रूरी।
सेवन पूजन में पति के नित, चित्त रहै न चहै द्विज दूरी॥
नाम गोविन्द सदा मन में, सु धरै सिरपै पद पंकज धूरी।
मानत सुख सदा दुःख में, द्विज की प्रिय नारि पतिव्रत पूरी॥

× × ×

नग्र बसे धनवान अनेक, रहैं घर आनन्द होत घनेरे।
औरन को कन देत सबै, इनको लखि दूरहितें घर फेरे॥
तीन उपास भये द्विज को, लखि नारि कहै सुनिये पति मेरे।
हद्द भई अब तो करिये सु कछू धन हेतु उपाय सबेरे॥

× × ×

पूजन सेवन है धन सों, धन सों निशि वासर आनन्द होई
यज्ञ विधान सबै धन सों, धन सों नर धर्म करैं सब कोई॥
या जग में जिनकें धन है, धन्य २ है पति वे नर सोई।
याचत ता हित मिश्र गोविन्दहि लै धन देहु दरिद्रहि खोई॥

× × ×

बैन प्रिया सुनि विप्र कह्यो तिय देत कहा धन के हित शिक्षा।
जे परिपूरन भक्त सदा सुन सम्पति की तिनको नहिं इक्षा॥
औरन को धन चहिए नारि, सुदासहिं सम्पति गोविंद रक्षा।
सांच बड़ो धन है द्विज के, पुनि दूसरी सम्पति केवल भिक्षा॥

× × ×

द्वारका जाहु जू द्वारकै जाहु जू, आठहु याम यही जक तेरे।
जो न कहो करिये बद है दुख, जात बनै न दशा तन हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तह, भूपति जान न पावत नेरे।
धीफल ना फल फूलपुंगी, फल भेंट को पांच न अक्षत मेरे॥

× × ×

या सुनके वह नारि पतिव्रत, पास परोसिन के जु गई है।
पाउक चांवर मांग लिये करि, जुक्ति परोसिन को हितई है॥
जान दिये पति को हितकै, कहि लीजिये, भेट अनन्द मई है।
जाय मिलो अब द्वारका नाथहिं, नाथ मनोरथ सिद्ध भई है॥

× × ×

ताहि समय प्रभु लोचन कोर परी द्विज ओर चले तज फैटों।
लोचन पूर भरे जल सों, भरि दोरत कीटहिं पेच लपेटों॥
भूल गई तन की मनकी सुधि, दौर द्विजै भर अंक समेटो।
कन्ध सों कन्ध लगा उरसों उर, करुना करिके करुनानिधि भेंटो

× × ×

भावज की कुशलात कही द्विज, नारि पतिव्रत भक्तिमई है।
मो पर प्रेम करैं अतिशय जिनुतापन में दये भोज कई है॥
पै नहिं जान परे अब के केहि कारण मो सुधि भूल गई है।
का अपराध बनो हम सों तेहि ते न कछू धर भेंट दई है॥

× × ×

अन्तरयामी नाथ लखो, लिये भेंट जरूर प्रतीत भई है।
सो नहिं देत सकोच करैं, द्विज ताहिन पोटरि ठीक ठई है॥
सो लखिकें बहुनन्द हंसे, यह चोंज कहा दबि कांख रई है।
हाथ बढ़ा द्विज के तिनतें, वह चांवर पोटरि खैंच लई है॥

कुंजर पुंज तुरंग बैंधे, महिषी वृष गोधन की अधिकाई।
भांतिन भांति सुखासन सोभित, त्यों शिविका रथ पांत लगाई।
दासिय दास समूह घने, लिये चौंर छड़ी बिचरें सुखदाई।
या रचना रचिके छिन में, प्रभु नारि पतिव्रत आन जगाई॥

× × ×

चौंक जगो चितवै चहुंधा, चक चौंध रही मुख बात न आवै।
देखत मन्दिर की रचना, तनकी सुति भूषन देखि भ्रमावै॥
हौं कि नहीं, किधौं, घर को, सपनो किधौं सही मन बोध न पावै
देखि अचम्भि रही थकि सी, जकसी चकसी न कछू कहि आवै

× × ×

ता छिन ढोंक दियो प्रभु ने, बहु भांतिन भांति बखान करे हैं।
स्वाद अनेक चखे हमने, इनके सम और न जान परे हैं॥
भावज मोहि मवेरि नवेरिकें, तन्दुल स्वाद सुधादि धरे हैं।
चाखत जात सराहत स्वाद, बखानत जात प्रमोद भरे हैं॥

× × ×

सोवत जान जबै द्विज कों, लैशिलपहिं संग चले बहुराई।
जाहिज के गृह आयसु दीन, रचो बिसकर्म जिती चतुराई॥
कञ्चन मन्दिर उच्च अनेक, रचे छिन में विस्तार कराई।
सम्पति भूरि भरी तिन में लखि मेरु सुमेरु कुबेर लजाई॥

× × ×

ताछिन दृष्टि परे प्रभु चौभुज, ज्यों रवि कोटि छटा दरसी है।
आनन कोटि मयंक लजैं, लखि अद्भुत रूप रही डरसी है॥
नाथ कह्यो मैं गुविन्द हौं भावज, यों सुनि आनंद में सरसी है
त्यों सुधि भूल गई तनकी उठिकें पद पंकज को परसी है॥

× × ×

यों प्रिय बैन सुनो तिय को, अति प्रेम भरो प्रभु के मन भायो।
कारन आवन को सुनु भावज, मौ अघ द्वारका मित्र सिधायो॥
सो अघ के बदले उन लायक, ना त्रैलोक पदारथ पायो।
लै धन गोरिक सो अधिरात, सँकोचत हौं तुम्हरे ढिग आयो॥

है धन धोरिकसो यह भावन, लीजिये सो अपराध छमा कै।
कीजिये सेवक जान मया, पुनि दीजियें आयसु मोहि कृपा कै॥
जाकर मित्रहिं देहुं पठाय, न भूलहु मोहि रहो अपना कै।
इत्यति सम्पति सों निशिवासर, भोग विलास करौ सुख पाकै

× × ×

एक टका घरको न दयो, अब नारिसों जाय कहा हम कै हैं।
भूखन मरत हू है घरनी, हम हूं अब जाय कहा उत खै हैं॥
नाहक भर्म गयो हमरो, पुर लोग सुनै कन भीख न दैहैं।
पाहन पेट भरें घर में, पै द्वारकानाथ के हाथ न जै हैं॥

× × ×

चांवर चाव लये गथ के, तिनके बदले न कछू हम पायो।
सकुचित ह्वै कर जोरि कही, अधसेरक चून न हाथ लगायो॥
ओढ़न को कमरी न दई, दमरी न दई घर कों पहुंचायो।
सारि कहै हम द्वारकै जायके, आकर नाहक भर्म गमायो॥

× × ×

पान सुदामा दिये सबकों, निज हाथ सुगन्ध समूह लगाये।
जो जिहि लायक सो तिहिकों, पट भूषण आदर दै पहिराये॥
मान कियो नृप को अतिशय, पुनि बैठ सिंहासन बैन सुनाये
हे नृप हे पुरलोग सुनो, यदुनन्द कृपा इतने सुख पाये॥

× × ×

छोड़ सबै जग जाल सदा भजिय निशिवासर आनँद कंदै।
ज्यों भजि के द्विज ने सुख लीन्ह, कहो तिहि को जस वर्ण सुछन्दै
जो सुनि गावहिं आनन्द सों, धरि ध्यान सुदामा समेत गवन्दै
पावहिं भक्ति पदारथ सो जु पढ़ें मन सों यह पूरो प्रबन्धै॥

× × ×

मास दमोदर में हरि वासर पक्ष प्रभा विधुवार मिलावै।
रूप अनूप धरै तिहिपै ग्रह लोकन पै रस दै समझावै॥
सम्वत सो कम सौ समझे, कर जोरि "विहारिय लाल" सुनावै।
पूर प्रबन्ध भयो द्विज को, सुनता वक्ता अति आनँद पावै॥

उपास्यदेव

[ले० श्री हनुमान जी शर्मा]

हे भगवन! आप कौन हैं यह मैं नहीं कह सकता। और आपके नाम-धाम-तथा काम क्या हैं यह भी मैं नहीं जानता। इतना जानता हूं, कि हिन्दू अपने मन्दिरों में मुसलमान मस्जिदों में, अंग्रेज गिरजाघरों में और महात्मा लोग मन मानी जगहों में जिस का उपध्यान या उपासना करते हैं वह शायद आप ही हैं। मेरा अनुमान तो यह है कि नीचे और ऊंचे सभी तरह के पेशे करने वाले काम शुरु करते समय जिसका नाम लेते तथा याद करते हैं वह आपही हैं। अगर मेरा यह अनुमान सही है तो सूर्यचन्द्र, तारा गण, इन्द्र अग्नि, हवागण; ब्रह्मविष्णु महेश्वर, भैरव भवानी गणाधिप; अल्ला, खुदा, महम्मद, या ईशा मसीह पैगम्बर ये सब आपही के रूपांतर हैं।

जुदे जुदे देवताओं के जुदे जुदे नाम और मूर्तियां मान कर जो लोग जुदे जुदे प्रकार से पूजते हैं और उनसे जुदे जुदे सब काम होना मानते हैं मैं समझता हूं यह भी आपकी माया है। अगर ये लोग हर एक मूर्ति या हर एक देवता में आपही की करामात मानलें और सबको छोड़ कर अकेले आप ही पर भरोसा करलें तो उनको जुदे जुदे देवों की उपासना से जो २ फल मिलते हैं वे सब आप अकेलों से हीमिल सकते हैं। परन्तु कठिनाई यह है कि, एक प्रकार से आपके गुण दोष नाम धाम और रूप रंग कई हैं और एक प्रकार से वे सब आपमें कुछभी नहीं हैं। ऐसी हालत में उपासक लोग आपको पहचानते नहीं हैं। उनके लिए दुर्गा ही दुशमन दूर करने वाली है, गणेश ही ऋद्धि सिद्धि देते हैं, हनुमान से ही सन्मान बढ़ता है, भैरव ही भय हटाते हैं और

लक्ष्मी से ही लाखों मुहरें मिल सकती हैं। इस मामले में मैं तो यह कहूंगा कि यदि वे लोग सीधे आपही से सब कुछ मिलने की आशा रखें तो उनको जुदे जुदे देवताओं के पास जाना ही नहीं पड़े। उनको आप सब कुछ देदेवें।

लेकिन महाराज! आपमें भी एक ऐब है। आप पर्दे में छिपे रहना अच्छा समझते हैं। प्रत्यक्ष (चौड़े) रह कर हर एक अर्ज करने वाले की मनोकामना पूर्ण करते रहना आप भी अपने लिए भार या आपत्ति मानते हैं। शायद आपका यह खयाल है कि करोड़ों मनुष्यों की करोड़ों कामना (या शिकायतें) एकही जगह सफल होना या दूर कराना झंझट का काम है। कई तुहमत होती है। कभी सांस लेने को भी मौका नहीं मिलेगा। करोड़ों आदमियों के लिए करोड़ों देवता ही काफी हो सकते हैं।

आपकी यह इच्छा और इन्तजाम अच्छे हैं। करोड़ों देवता जो कुछ भी काम करेंगे सब आप की मर्जी के मुताबिक ही करेंगे। फिर करोड़ों अभिलाषा रखने वालों का आपके बंगले पर इकट्ठे होना किस काम का। रोज बरोज व्यर्थ ही इतनी भीड़ क्यों की जाय। परन्तु मैं पूछता हूं कि अगर वे करोड़ों आशार्थी किसी दिन यह मानलें कि जिस भान्ति करोड़ों देवताओं में आपकी ही सत्ता काम कर रही है उसी भांति वही सत्ता हम सब में भी मौजूद है और वही विश्वास जो हम दूसरे देवों में या आप में करते हैं वह खुद अपने आप में करलें तो क्या हमारी इष्ट सिद्धि नहीं हो सकती जरूर ही सकती है फिर आपको कौन पूछ सकता है?

हर एक आशार्थी अपने आंगन में बैठ कर आपकी उपासना अपनी अन्तरात्मा के अन्दर कर सकते हैं। और इस तरह करने पर भी सब इच्छायें सफल हो सकती हैं। कठिनाई इतनी है कि उपासक लोग आपके स्वरूप को सहज ही समझते नहीं हैं। मामूली मनुष्यों तक को आपके स्वरूप का अपना आप मालुम होने के लिए हमारे तत्वदर्शी ऋषियोंने आपजैसा एक और देवता कायम किया है। और उसकी पूजा का तमाम दुनिया को अधिकार है। वह देवता है भी आप से मिलता जुलताही। आप में और उस में कोई फर्क नहीं दीखता। जो लोग आपको देख नहीं सकते वे उसको देख कर आप के देखने के बराबर हो सकते हैं। असल में आपके सब गुण हू बहू उसमें मौजूद हैं। आप जिस भांति साकार या निराकार होकर बराबर में दीख रहे हैं उसी भांति वह भी सारी सृष्टि के हरेक प्राणी और हरेक चीज में साकार और निराकार दोनों तरह दीखता है और जिस भांति आप सारी दुनिया के कर्ता धर्ता विधाता संहर्ता हैं उसी भान्ति वह भी है।

कोई पूछे कि आखिर वह देवता है कौन? तो हम बतलाते हैं कि, है वही जो प्रातः पूर्व में उदय और सायं पश्चिम में अस्त होता है। आकाश के असंख्य तारागण जिनकी विज्ञान बेत्ता बड़ाई करते हैं वे सब उसी से प्रकाशमान हो सकते हैं और पृथ्वी की प्रत्येक चमकीली चीजों में वह दीखा करता है। महर्षियों ने संसार की सभी जातियों के लिए उस देवता की उपासना बड़ी मुफीद (लाभदायक) मानी है। साइंस और तंदुरस्ती के विचार से भी उसकी उपासना सब से अच्छी बतलायी है। इन दिनों तो उससे अनाप सनाप और भी कई काम करालिए जाते हैं। दिनमें प्रकाश, रातमें विकाश, ऋतुओं में बदला व और आराधना में ईश्वर की बराबरी के सिवा भानुताप और सूर्य किरणों के द्वारा अनेक तरह के आश्चर्य जनक और भी बहुत काम होते हैं अंग्रेजों ने तो सूर्य से आग, भाफ, ताप, और

हीरा गलाने तक के काम करा लिए हैं।

इसी लिए पहले के महर्षियों ने ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों के लिए 'उपास्य देव' सूर्य और 'जपनीय' सावित्री बतलायी है। बहुत कुछ सोच विचार कर देखा जाय तो ये दोनों ही संपूर्ण देवों और मन्त्रों का या ईश्वर और शक्ति का अथवा पुरुष और प्रकृति का सब काम कर सकते हैं। भक्तों के लिए ये दोनों सर्वोत्तम सम्पत्ति हैं। आत्मरक्षा के लिए ये अमोघ अस्त्र हैं। उपासकों के लिये सब कुछ देने वाले उपास्य हैं और संसार की संपूर्ण वस्तुओं में और वेदों या शास्त्रों के संपूर्ण मन्त्रों में सविता और सावित्री इन दोनों ही का प्रकाश और प्रभाव प्रत्यक्ष फैला हुआ है।

प्राचीन काल के हिन्दू किसी भी रूप में सूर्य को ही अधिक मानते थे और गायत्री को ही अधिक जपते थे। अब भी सामान्य मनुष्यों तक में स्नान करके अंजली भर जल से अर्घ्य देने, अंगुलियों की जालीसे सूर्य को देखने और आठ अठाईश या १०८ गायत्री जप या राम राम जपने की प्रथा है और इतने से भी प्रकट या प्रच्छन्न अनेक लाभ होते हैं!

ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्यों की 'संध्या' में सविता और सावित्री का ही प्राधान्य है। विशेष कर तपोधन ब्राह्मण संध्या में सूर्य को ही अर्घ्य देते हैं और उसको देखते हुए तल्लीन होकर गायत्री जपते हैं।

हे भगवन्! क्या इस लेख का यही प्रयोजन है कि अड़ी भिड़ी में अपने एवज काम करने या समझदार मनुष्यों का पूर्णतया मन संतोष होने के लिए ही आपने सूर्य को दूसरा परमेश्वर नियत किया है। अथवा आप इसी रूप से सृष्टि के प्रत्येक प्राणी और पदार्थों को प्रकट करते जीव देते चैतन्य रखते बढ़ाते और विनाश करते हैं।

विचार कर देखा जाय तो हे प्रभो! मेरा खयाल गलत नहीं है। आपका साकार, निराकार, निर्गुण गुणात्मा, व्यक्त अव्यक्त, चित्य अचित्य, और चराचर में विद्यमान होना आदि सब सूर्य में हैं अस्तु।

अलक्ष्य का लक्ष्य करो

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

सब शास्त्र और महात्मागण कहते हैं कि हमारा स्थूल देह ईश्वर के पास नहीं जासकता इन्द्रियों से ईश्वर नहीं जाना जासकता, वाणी वहां पहुंच नहीं सकती, मन वहां जा सकता नहीं, बुद्धि उसे पकड़ सकती नहीं, और हमारे कर्म भी वहां पहुंच नहीं सकते। क्योंकि यह सब स्थूल वस्तु हैं, जड़ और सपूर्ण हैं अपनी सत्ता नहीं रखते और नाशवान हैं, परन्तु परमात्मा तो चैतन्य-स्वरूप, अविनाशी व्यापक है, पूर्ण, आनन्द-स्वरूप निर्विकार, निराकार, निरंजन, स्वयं प्रकाश तथा सर्वशक्तिमान है इस से वेद ने उसके लिये "नेति-नेति" कहा है, इससे परे बाहर तथा भिन्न परमात्मा है। अर्थात इन गुणों से, माया से तथा प्रकृति से भी परे है और शरीर, इन्द्रिय, वाणी, मन, बुद्धि तथा कर्म यह सब तो गुणों से उत्पन्न हुये हैं, इस से वे परमात्मा को नहीं पकड़ सकते। क्योंकि वे ईश्वर से सीधे उत्पन्न नहीं हुए हैं, वे अमर व स्वयं प्रकाश नहीं हैं। महान ईश्वर के प्रकाश से वे प्रकाशित हो रहे हैं और सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति के कारण वे शक्तिमान हैं। इस से यह अपूर्ण जड़ वस्तुयें संपूर्ण चैतन्य स्वरूप के पास पहुंच नहीं सकती। तब हमें करना क्या चाहिये! हम

कैसे ईश्वर को पा सकते हैं ? शास्त्र में कहा है कि जब तक हम ईश्वर को न देख लें तब तक हमारा जन्म वृथा है, तब तक अखंड आनन्द नहीं मिलता, जन्म मरण से मुक्त नहीं हो सकते, और न तब तक हम मोक्ष सुख ही भोग सकते हैं। इस से हमें किसी न किसी प्रकार से ईश्वर को देखना चाहिये, किंतु ईश्वर के पास जाने के हमारे साधन तो अपूर्ण हैं, तब हम क्या करें ?

शास्त्र में कहा है कि आत्मा द्वारा परमात्मा को पकड़ो, क्योंकि आत्मा परमात्मा का अंश है, अमरत्व चेतनता, ऐश्वर्य, ज्ञान और आनंद आदि परमात्मा के सद् गुण आत्मा में रहते हैं। इतना ही नहीं आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध है, इससे आत्मा परमात्मा के पास पहुंच सकता है। इसलिये आत्मा द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

आत्मा द्वारा परमात्मा को पाने के लिये उपनिषद् में कहा है कि ओंकार मनुष्य है, आत्मा बाण है और परमात्मा बाण का निशान है, इस से सचेत होकर बाण मारो। मनुष्य में से छुटा हुवा बाण जिस प्रकार निर्धारित निशाने में बिंध जाता है वैसे ही आत्मा को परमात्मा में बांध दो। ऐसा कैसे सम्भव है ? इस के उत्तर में शास्त्रकार कहते हैं कि सावधानी से सब हो सकता है। यह सावधानी क्या है ? इसके विषय में महाभारत में कहा है।

कौरव पाण्डव महात्मा द्रोणाचार्य के पास बाण विद्या सीख रहे थे। एक दिन द्रोणाचार्य ने सब विद्यार्थियों की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने वृक्ष पर पक्षी के आकार का एक खिलौना। बांध कर दुर्योधन से कहा कि इस पक्षी की आँख में बाण मार। दुर्योधन ने उठकर धनुष पर बाण चढ़ाया और निशाना लगाने लगा, तब द्रोणाचार्य ने पूछा पहिले बतलाओ तुम देखते क्या हो ? दुर्योधन ने कहा यहां जो लोग बैठे हैं उनको, वृक्ष को, आपको तथा बादल को देखता हूं। अपने शिष्य की यह बात सुन कर द्रोणाचार्य दुःखी हुए, वे समझ गये कि यह निशाना नहीं लगा सकेगा और हुआ भी ऐसा ही। दुर्योधन ने बाण छोड़ा और वह खाली गया। इसके पश्चात् युधिष्ठिर की बारी आई उन्होंने भी बाण चढ़ाया। द्रोणाचार्य ने उनसे भी ऊपर लिखित प्रश्न किया। युधिष्ठिर ने कहा आकाश वृक्ष, पक्षी तथा कुछ कुछ यहाँ पर बैठे हुए लोग भी दिखाई पड़ते हैं। यह सुन कर द्रोणाचार्य ने कहा तुम भी सफल नहीं होगे। अनन्तर बहुत से लोगों की परीक्षा लेने के पश्चात् अर्जुन की बारी आई। उन्होंने बाण चढ़ाकर निशाना लगाया, तब गुरु जी ने पूछा तुम्हें क्या क्या दिखाई पड़ता है ? अर्जुन ने उत्तर दिया कि बाण की अणी तथा पक्षी की आंख इन दो चीजों के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। यह सुन प्रसन्न होकर गुरुजी ने कहा, शाबाश ! मेरा परिश्रम सफल हुआ तू निशाना लगा सकेगा। इसी समय अर्जुन ने बाण मार कर पक्षी की आंख को बींध दिया।

भाइयो ! जब ऐसी एकाग्रता, तन्मयता एवं ऐसा ऐक्य होगा और बाण तथा निशान के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा तभी आत्मा रूपी बाण से परमात्मा रूपी लक्ष्य बींधा जा सकेगा। जब हृदय में ऐसी लगन लगती है तब इन्द्रिय मन, बुद्धि तथा कर्म बदल जाता है। उनमें उत्तमता आजाती है, प्रभु प्रेम तथा नया बल आ जाता है और सर्व भाव से ईश्वर के आधीन होकर वह ईश्वर मय हो सकते हैं। क्योंकि वे आत्मा की सत्ता द्वारा ही सत्तावान हैं इसलिये जीव जब जागृत हो

जाता है, ईश्वर की ओर आकृष्ट हो जाता है, ईश्वर की महिमा समझ जाता है और ईश्वरीय आनन्द का अनुभव करता है तब उसकी दस इन्द्रियां मन बुद्धि तथा कर्म ईश्वर की ओर बढ़ते जाते हैं और ईश्वर मय होने लगते हैं। यद्यपि ये दास ईश्वर तक पहुंच नहीं सकते तो भी अपने मालिक जीवात्मा को ईश्वर की ओर ढकेलने में बड़ी सहायता करते हैं।

इससे मेरे परम प्यारे प्रिय पाठको! सर्व शक्तिमान अखण्ड आनन्द स्वरूप परमात्मा के पास यदि पहुंचना हो तो हृदय से अपनी आत्मा को जागृत करने का प्रयत्न करो। इसके जागृत होने से इसके सब नौकर सीधे चलेंगे। याद रखो कि देवाधिमहाराजाधिराज परमेश्वर की सेवा में आत्मा रूपी राजा स्वयं जा सकता है सेवक वहां जाने योग्य नहीं हैं। यदि अनन्त काल का आनन्द भोग करना हो तो जीव को जागृत करो और उसे ईश्वर मय कराने का प्रयत्न करो। इस प्रकार करने से अलक्ष्य का लक्ष्य हो सकता है।

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

१. ईशावास्य उपनिषद् के १८ श्लोक कण्ठस्थ कर लेने चाहियें। यह तुम्हारे दैनिक स्वाध्याय का अंग होना चाहिये। यह एक अद्भुत उपनिषद् है। इन श्लोकों को ध्यान के समय भी उच्चारण करना चाहिये।

२. भगवत् अपने पूजकों की तृप्ति के लिये तथा अपने भक्तों के पवित्र चिन्तन से प्रेरित होकर स्वयं माया का शरीर धारण करते हैं। भगवत् १६ कलाओं सहित कृष्ण रूपमें और १४ कलाओं सहित राम रूप में अवतरित हुये।

३. साधारण तया जब कि मनुष्य अपने किसी मित्र को अरुन्धती तारा दिखलाता है तब पहिले वह उसका ध्यान जमाने के लिये अरुन्धती के पास के किसी चमकीले तारे को दिखलाता है और पश्चात् वह उसके ध्यान को अरुन्धती पर ले जाता है। इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य को पहिले 'प्राण ब्रह्म है' 'मन ब्रह्म है' यह उपदेश देते हैं। क्योंकि जिज्ञासु पहिले पहल अति सूक्ष्म ब्रह्म तत्व को नहीं समझ सकता। तब वे जिज्ञासु को प्राण और मन ब्रह्म नहीं हैं, इन दोनों से परे ब्रह्म का उपदेश देते हैं। यह अरुन्धती न्याय है।

४. प्राण शक्ति है, मन विचार तत्व है अर्थात् यह विचार उत्पन्न करने का यन्त्र है।

५. स्वर्ग में भी दोष हैं। जब कि स्वर्ग के भोग का समय समाप्त हो जाता है तब मृत्यु लोक में पुनः आना पड़ता है। फिर स्वर्ग में द्वेष और ईर्षा भी होती हैं। जब तक ईर्षा है तब तक मनःशान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

६. दूसरों के दोष, निर्बलता और दुःखों पर मत हंसो। कुछ काल पीछे तुम्हारे ऊपर भी इनका आक्रमण होगा। कर्म बड़ा गहन है, यह शरीर कर्मों का फल है। कोई मनुष्य इसकी गति को नहीं जानता क्योंकि कर्म की गति बड़ी गहन है। "गहना कर्मणो गतिः"

७. ज्ञानी जब सत् चित् आनन्द रूप से अपना एकी भाव करता है तब सर्प जिस प्रकार अपनी केंचुली को छोड़ देता है वैसे ही वह अपने शरीर को छोड़ देता है अर्थात् उसका शरीर से अध्यास मिट जाता है।

८. कभी कभी नित्य सिद्ध संसार के कल्याण

के लिये अपनी इच्छा के विरुद्ध भी शरीर धारण करते हैं। वे कोई आत्मिक साधन या तप नहीं करते, अपने बालकपन से ही वे अपूर्व ज्ञान और शक्ति प्रकाशित करते हैं। श्रीज्ञानदेव जी जिनकी समाधि पूना से ७ मील है नित्य सिद्ध थे। जब कि वे बच्चे थे उन्होंने एक भैंस को स्पर्श किया। वह भैंस सब वेदों का उच्चारण करने लगी। त्रिचना पली जिले के सदाशिव ब्रह्म भी जो कि १५० पूर्व होचुके हैं जन्म के सिद्ध थे।

९. कोई स्वप्न सिद्ध भी होते हैं। वे स्वप्न में गुरु मन्त्र ग्रहण करते हैं, उसका जप करते हैं और शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं।

१०. ज्ञानी सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और अज्ञानी मूर्ख भी प्रसन्न रहते हैं। क्योंकि वे अपने शिरको धर्माधर्म के विषय में व्याकुल नहीं करते। केवल वे लोग अति दुःखी होते हैं जिनमें विवेक अभी जागरित हुवा है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति से पूर्व इस अवस्था में से गुजरना पड़ता है।

११. ज्ञान योगी सर्वदा ज्ञान निष्ठा में रहता है, वह कमरे में नहीं बैठता, उसको किसी आसन से बैठने की आवश्यकता नहीं और उस पर कभी माया का असर नहीं होता। ज्ञानयोगी कभी समाधि या बिना समाधि की अवस्था में नहीं होता।

१२. राजयोगी को कमरे की आवश्यकता है। वह आसन से बैठता है। जब उसकी समाधि अवस्था खुलती है तब उस पर माया का भी असर होता है तदपि वह सांसारिक मनुष्यों का इतना नहीं होता। वह समाधि और बिना समाधि दोनों अवस्थाओं में रहता है।

१३. जब तुम विषयों में मिथ्या बुद्धि का ध्यान रखोगे तो वासना तुम्हारे मन में नहीं पैदा होगी।

१४. वासनायें बन्धन का हेतु हैं। ये शुद्ध और अशुद्ध भेद करके दो प्रकार की हैं काम, क्रोध और लोभ यह अशुद्ध वासना है। तप, जप, ध्यान, स्वाध्याय, दान और भजन यह शुद्ध वासना है। शुद्ध वासना मोक्ष में सहायक होती है।

१५. देह वासना, शास्त्र वासना और लोक वासना यह वासना के तीन भेद और हैं। इन तीनों वासनाओं को विचार और ब्रह्म चिन्तन से निर्मूल करना चाहिये।

१६ श्रद्धा पूर्वक गंगा स्नान से पाप नष्ट होते हैं, चन्द्रमा शरीर और मन को शीतल करता है और कल्पवृक्ष दरिद्रता दूर करके इच्छित पदार्थ प्रदान करता है। सत्संग और महात्माओं के दर्शन ये तीनों पदार्थ प्रदान करते हैं इसके अतिरिक्त उसको शान्ति प्राप्त होती है। महात्मा जीवित तीर्थ होते हैं। गंगा, जमना आदि नदियाँ उनके पवित्र चरणों में बहती हैं। यदि तुमने एक बार एक जीवन-मुक्त को भोजन करा दिया तो तुमने समस्त संसार को खिला दिया।

१७. एक महाराज नाना प्रकार के खेल तमाशों और भोग विलास का जो उसके महल में होते हैं उपभोग करता है। इसी प्रकार से तुम भी मन के साक्षी रूप होकर नाना प्रकार की विलासलीला और दृश्य जो शरीर के अन्दर हो रहे हैं इन्द्रियों और अन्तः करण के द्वारा उपभोग करते हो। सब संकल्पों को हटादो, मन को निःसंकल्प बनाओ यही मोक्ष है।

१८. वास्तव में संसार कुछ नहीं है, यह सब भ्रान्ति मात्र है केवल छाया है। जैसे आकाश में नीलता दिखाई देती है वैसे ही यह संसार ब्रह्म में दिखाई देता है। वास्तव में यह सब कुछ शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म है।

१९. जहाँ कहीं सत् वस्तु की खोज है वहीं पर

सत्युग वर्तमान है, जहां भजन और पूजा है वहां पर द्वापर युग है और जहाँ कलह है वहाँ पर कलियुग है।

२०. जब सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से पृथक् होता है तो इसकी संज्ञा मृत्यु है।

२१. उपाधि रूप घट के टूटने पर उस घट का आकाश जैसे का तैसा रहता है, वह नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार से यह स्थूल शरीर जो पांच तत्वों का बना हुवा है नष्ट होता है या अपने अपने तत्वों में मिल जाता है। परन्तु आत्मा सर्वदा एक रस रहता है और सर्वत्र व्यापक है। लेकिन अज्ञानी सोचते हैं कि आत्मा मृत्यु के समय नष्ट हो जाता है। वे शरीर को आत्मा के तुल्य समझते हैं, यह उनका असत्य विचार है जो कि बन्धन का कारण है।

२२. सोने की बाली सोने का विवर्त है, सर्प रज्जु का विवर्त है, बेंत या छड़ी लकड़ी का विवर्त है। इसी प्रकार से संसार और यह शरीर ब्रह्म या आत्मा का विवर्त है। (विवर्त का अर्थ है अध्यास)

२३. एक उत्साही जिज्ञासु केवल वैराग्य के कारण ध्यानादि के लिये एकान्त पसन्द करता है। यदि किसी कामी पुरुष को एकान्त स्थान में रक्खा जाय तो उसकी दशा वही होगी जो कि एक मछली की जल से बाहर। जितने देर वह इस अवस्था में रक्खा जायगा उसमें काम के ही विचार उठेंगे।

२४. मुक्ति दो प्रकार की होती है, एक क्रम-मुक्ति और दूसरी सद्यो मुक्ति। पहली भक्तों की बुद्धिमान् मुक्ति है, वे ब्रह्मलोक में जाते हैं, वे वहां ब्रह्मा के साथ रहते हैं, और वहां वेदान्त के गूढ़ तत्व का पूर्व रूप प्राप्त करते हैं, जग प्रलय के पश्चात् वे ब्रह्मा के साथ निर्गुण ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। सद्यो-मुक्ति ज्ञानियों की तत्क्षण मुक्ति होती है, वे तुरन्त बिना ब्रह्मा से भेंट हुवे निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

२५. संसारियों का हृदय प्राकृतिक आत्मशक्ति, क्रूर कर्म, क्रोध, द्वेष और लालच से कठोर हो जाता है। हृदय को निरन्तर सहानुभूति पूर्ण सेवा, दया, धर्माचरण के कर्म, प्रेम, मन को वश में करने, दान और उदारता से नम्र बनाना चाहिये।

२६. भगवान् की मोहक शक्ति माया दो प्रकार के कर्म करती है। यह आवर्ण शक्ति के द्वारा आत्मा को छुपाती है पीछे यह स्त्री के लिये उन्मत्तता, शक्ति, रुपया, दौलत, सन्तान और घबड़ाहट पैदा करती है। यह असत्य विचार पैदा करती है कि यह शरीर ही आत्मा है और यह संसार और शरीर सत्य है।

२७. धर्माचरण की नींव वेदान्त है। यही कारण है कि बाइबिल में यह कहा है "तू अपने पड़ौसी को अपनी आत्मा की भान्ति प्यार कर" उपनिषद् कहते हैं 'तेरा पड़ौसी वास्तव में तेरा आत्मा है और जो कुछ तुझ को उससे पृथक् करता है वह केवल माया है।

२८. यदि शरीर से देहाभिमान न हो तो भोग इच्छा उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

२९. तृष्णा महान् अन्धकार है। इस अन्धकार में उल्लू रूपी काम, क्रोध और लोभ फिरते हैं, ज्यों ही ज्ञान रूपी सूर्य उदय हो जाता है तृष्णा रूपी अन्धकार दूर हो जाता है।

मैं

[ले० श्री मोहन शर्मा]

यह एक आश्चर्य पूर्ण अद्भुत वस्तु है, जगत् का सारा, सम्बन्ध इसी पर निर्भर है, जगत् की प्रत्येक रचना इसी पर स्थिर है, जीवन की रहस्य-मय, चिन्तनीय वस्तुओं में एक यह प्रधान चीज़ है। जीवन का सारा-महत्व इसी से सम्बन्धित है। हमारें सुखों का मूल और दुःखों का कारण भी यही है। यह एक कठिन समस्या है जिसको सुल-झाना असम्भवसा है। संसार के उत्थान पतन का यही कारण है। हम अपने को इसी की बदौलत उन्नत समझते हैं। हिंसा और अहिंसा का प्रादु-र्भाव इसी से हुआ है, काम, क्रोध आदि प्रबल शत्रुओं के भयङ्कर आक्रमण में यही हेतु है। माया की मोहिनी लीलाओं का विस्मयप्रद फंदा इसीसे उत्पन्न हुआ है। जिसमें फंसकर तड़फड़ाते हुए भी दुःख को आनन्द मान उसीमें कसे जा रहे हैं। संसार के महान युद्ध, संसार की कला कुशलता, और उन्नति की प्रबल चेष्टा का यही आधार है। सम्पूर्ण, मानव, समाज मुग्ध होकर चिर संचित प्रबल आकांक्षाओं की शान्ति की आशा से जिन वैज्ञा-निक चमत्कारों की ओर ताक लगाये बैठा है, वह इसीका गौरव है। समाज, सुधार का भीषण ताण्डव नृत्य, स्वराज्य की प्रबल भावना, जाति गत द्वेष की अत्यन्त वृद्धि, साम्प्रदायिकता का अटल दौर दौरा, इन सब के मूल में यह विद्यमान है। धर्म की यही जननी है। निरस्त्रीकरण के मूल में नवीन तेज, अस्त्रों की छिपी झलक को लिये यही खड़ी है। जीवन की प्रत्येक क्रिया का आस्तित्व इसी पर निर्भर है। यदि गहन दृष्टि से सोचा जाय तो पता लगेगा कि सारे विश्व का आस्तित्व ही इसी पर है। ऐसी यह अचिन्तनीय, अजीब, क्या बलाय है? इसका क्या स्वरूप है? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। इस पर भली भाँति विचार करना चाहिये। क्या यह हमारा पाञ्चभौतिक शरीर 'मैं' है! पर यदि यह शरीर ही 'मैं' होता तो हम जो चीज़ें खाते हैं वे भी 'मैं' ही हैं फिर हमारे खाने से बची हुई चीज़ें 'मैं' कहलायेंगी या नहीं। हम शौच गये, पेट साफ कर आये हमारे शरीर से निकली हुई यह वस्तु 'मैं' है या नहीं?

हमारा शरीर १॥) मन था, कुछ दिनों में १॥।) होगये। क्या यह 'मैं' बढ़ी? यदि बीमारी के कारण वही शरीर फिर १।) मन होगया तो क्या यह 'मैं' घटी? यदि यह 'मैं' घटी बढ़ी तो फिर उसका क्या हुआ?

आपका हाथ बड़ा सुन्दर था, मोटर की चोट से बेकाम होकर सड़ गया, डाक्टर ने काट डाला, क्या अब आप उसको 'मैं' कहते हैं?

पेट में यह शरीर पानी की बून्दों के स्वरूप में आया, धीरे धीरे बढ़ा, बाहर आया, बालक हुआ फिर जवान होकर एक लम्बा चौड़ा शरीर बन गया। इनमें 'मैं' कौनसा था?

एक दिन बुड्ढा होकर यह शरीर जरजर होगया, बीमारी से घिर गया, यमराज ने बुलावा भेजा, आप शरीर को छोड़ चले, यह यहीं रह गया और जला दिया गया, क्या यह शरीर 'मैं' था?

आप निस्संदेह कह देंगे नहीं यह शरीर तो 'मैं' नहीं है। तब क्या हमारा नाम 'मैं' है।

पुराने जमाने में हमारे नाम के न मालूम कितने होगये हैं और इस समय न मालूम कितने हैं, भविष्य का कोई पता ही नहीं कि कितने होंगे क्या वे सभी 'मैं' थे हैं या होंगे?

आज हमारा नाम 'पद्म' था और कल 'वसु' कर दिया गया, क्या पहले वाला नाम 'मैं' नहीं है?

हम एक नये स्थान पर गये, वहाँ हमारा नाम कोई नहीं जानता, क्या 'मैं' वहां नहीं है?

जब हम शरीर को छोड़ कर एक अनजान जगह को चलेजाते हैं तो क्या हमारा नाम 'मैं' साथ रहता है ?आप बिना संकोच कह देंगे, यह नाम भी 'मैं' नहीं है। अब यदि हम हमारे शरीर के किसी एक भाग को 'मैं' कहें तो वह भी ठीक नहीं और न कोई सांसारिक वस्तु ही मैं कहला सकती। क्योंकि उस महाप्रयाण में हमारे साथ कोई नहीं रहता। हमारी प्राण प्रियतमा पत्नी और हमारे सुहृद तथा मित्र भी 'मैं' में नहीं आ सकते। जब हमारा शरीरी और नाम जिसके लिये हम यत्न करते हैं, जगत् का कोई भी अन्याय हम नहीं छोडते, भाई, बन्धु, माता पिता सब का स्नेह त्याग देते हैं सब दुःख और पापों की जड़, बड़े कष्ट और परिश्रम से प्राप्त धन का संग्रह भी हम जिस शरीर और नाम के लिये ही करते हैं। जिसका हमें घमंड रहता है, जिसके बल पर हम फूले नहीं समाते, लोगों में अभिमान से मस्तक ऊंचा किये चले जाते हैं, अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझते, जिसकी रक्षा में प्राण युग जूझ मरते हैं, हमारी प्यारी से प्यारी वस्तु का भी त्याग हमें नहीं अखरता वे भी जब यह 'मैं' नहीं है तो यह क्या है? बुद्धि लगाइये, सोचिए, पता लगाइए यह 'मैं' क्या वस्तु है? जब इसकी खोज पालेंगे फिर इस संसार में और कुछ खोजने के लिए नहीं रह जायगा, आप कृतार्थ हो जायेंगे।

ओ! विज्ञान की मायाविनी मोहिनी चमक के प्रकाश में चौंधियाये हुए विज्ञानवेत्ता गण! जरा सोचें, किस कपटमयी असत्य विनाशिनी प्रपञ्च भरी माया के फंदे में फंस कर आप प्रबल वेग से बहे जा रहे हैं, इस अन्ध प्रवृत्ति पूर्ण, मायाविनी के फंदे से निकल पड़ें नहीं तो कोई पता न लगेगा। सच्चे विज्ञान के पीछे पड़कर पहले पहल इस 'मैं' कहलाने वाली वस्तु का, जिसकी बदौलत आपका अस्तित्व है और जिसके प्रभाव से आप इस विज्ञान की खोज कर रहे हैं, इस खोज के पहले उसीको खोज डालें। इतने परिश्रम की आवश्यकता नहोगी, इतना मस्तिष्क नहीं लगाना पड़ेगा। आज की इस भयंकर कष्ट दायिनी अर्थ-समस्या के पीछे पड़ने की फिर आवश्यकता न रह जायगी। इस 'मैं' विज्ञान को, बस इसी एक को खोजते ही सब मिल जायेंगे, सब का पता लग जायगा। इसीको खोजें, इसीमें सब छिपे हैं, यही सब की कुञ्जी है। क्यों व्यर्थ-जीवन बरबाद कर रहे हैं लाख खोजने पर भी जिसकी खोज में शतदिन लगे हैं वह पदार्थ, सिवा इसके नहीं मिलने का। सर्व छोड़दें, इस अद्भुत वस्तु 'मैं' की खोज निकालें, सारा सुख, सारी शान्ति, समग्र विज्ञान इसीमें भरा है। इसका पता लगाते ही सारा 'विज्ञान' आपके 'हस्तामलकवत' हो जायगा।

यही परमज्ञान, यही अध्यात्म ज्ञान और यही 'रहस्य भरा ईश्वर' है। इसी 'मैं' में ही सब भरा है। अपूर्व शान्ति, अलौकिक सुख, दिव्य प्रकाश अनुपम आनन्द का इसी में निवास है। एक चित्त से खोज में लग जावें, पड़दे टूट जायेंगे, आनन्द की अजस्र धारा प्रबल वेग से अटूट बहने लगेगी। मौज का मजा मिलेगा। संसार में सिवा आनन्द के और कुछ न रह जायगा। यह 'मैं' ऐसी ही वस्तु है, जो इसकी खोज करता है उसको सारे सुख और नित्य शान्ति प्रदान करती है पर जो इसकी मोह-भरी कीच में फंसकर भुलावेंगे भूल जाता है वह दुःखों के समुद्रों में तैरता हुआ अथाह सागर

के अतल तल में गोता खाने लगता है। अतः इस 'मैं' की माया के भुलावे में पड़ कर दूसरे की खोज छोड़ दें, इसी को खोजें, इसीको हल करें, देखिए, सारा संसार ताक रहा है, इसकी खोज करके, उस पर सुधाधारा वर्षा दें, वह आजीवन आपके गुण गान करेगा। इसकी नाटकीय, मोहिनी लीला में फंस कर धधकती ज्वाला में उस बिचारे को न जलावें, रहम करें, नहीं तो उसको जलाकर यह 'मैं, आपको भी जला डालेगी।

भक्त विट्ठलदास जी

[ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव]

विट्ठलदास जी मथुरा के चौबे थे। उनके पिता और चाचा उदयपुराधीश राना के यहां पुरोहित थे। अनबन होने के कारण दोनों आपस में लड़ कर मर मिटे थे। उस समय विट्ठलदास जी बहुत छोटे थे। वे न कहीं आते थे और न कहीं जाते थे सदा भगवद्भजन में तल्लीन रहा करते थे। उनका सिद्धान्त यह था।

'संग किसी के नहिं चलो, यह जग माया रूप।
तातें सब वाको भजो, जो जगदीश अनूप॥

एक दिन राना ने उन्हें बुला भेजा। परन्तु वे नहीं गये, और यह कहला भेजा–'कि मुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं है और न मैं मान प्रतिष्ठा, आदिका भूखा हूं। इसलिये मेरे आने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

यह उत्तर पाकर राना जी आश्चर्य चकित हुऐ। परन्तु वे हताश नहीं हुऐ! उन्होंने इस अभिप्राय से कि भजन, कीर्तन की खबर पाकर विट्ठलदास जी स्वयं चले आवेंगे साधुओं को निमंत्रण भेज कर बुलवाया और उनके आजाने पर भजन कीर्तन आरंभ कर दिया। जिस समय पखावज बज रही थी, सितार और सारंगी के तार छिड़े हुऐ थे तथा साधु और भक्त लोग भजन गा रहे थे उसी समय विट्ठलदास जी आ पहुंचे और आनन्द मग्न होकर नाचने और गाने लगे। भजन यह था:–

'वैराग जोग कठिन, ऊधो! हम न करवहो।
जमुना जल अति गंभीर, तन मन नहिं धरत धीर,
कृष्ण विरह लागी, बरुक बुडि मरवहो॥'

गाते २ प्रेमावेश में उन्मत्त होकर छत पर से गिर पड़े। साधु लोग उन्हें उठाकर घर ले गये। वे तीन दिन तक उसी दशा में पड़े रहे। चौथे दिन होश में आये और यह गाते हुये उठ बैठे।

'जमना जल अति गंभीर, तन मन नहिं धरत धीर।
कृष्ण विरह लागी, बरुक बुडि मरवहो।
वैराग जोग कठिन, ऊधो! हम न करव हो॥'

राना ने वैद्य और धन द्रव्यादि भी भेजा था। विट्ठलदास जी ने वैद्य को तो यह कह कर कि मैं भला चंगा हूं, मुझे औषधि की आवश्यकता नहीं है विदा कर दिया। और धन द्रव्यादि को साधु महात्माओं में वितर्ण कर दिया। इसके पश्चात् वे अपनी माता और स्त्री को लेकर मथुरा जी चले आये।

कुछ दिन बाद उनकी स्त्री ने जो उदय पुराधीश राना की पुत्री थी, पुत्र रत्न प्रसव किया। सबको बड़ी खुशी हुई। और उसका नाम रंगीराय रखा। पुत्रोत्सव भी बड़ी धूम धाम से मनाया गया। बहुत से गाने बजाने वाले एकत्र हुऐ। उनमें एक नटनी भी थी। वह बड़ी कृष्ण-भक्ति-परायण थी। कई दिनों तक भजन कीर्तन होता रहा। विट्ठलदासजी भी उसमें भाग लेते थे। एक दिन कुछ ऐसा समय बंधा और नटनी ने ऐसा सुन्दर राग

अलापा कि विट्ठलदास जी प्रेमवश में उन्मत्त हो गये और आपे से बाहर होकर बोले।

भाई! जो तेरी इच्छ हो सो माँगले।

नटनी ने कहाः-

महाराज! यदि आपको देना ही है तो नवजातशिशु को मुझे दे दीजये मैं इसका बड़े लाड़ प्यार से पालन पोषण करूंगी।

विट्ठलदास जी ने कहाः-बहुत अच्छ!

यह कह कर वे भीतर चले गये और रंगीराय को उठालाये और नटनी की गोद में डाल दिया। वह रंगीराय को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। परन्तु बिरादरी के लोग बिगड़ पड़े। विट्ठलदास जी की धर्म पत्नी भी आई उन्होंने नटनी से कहा जितना चाहो उतना धन द्रव्य लेजाओ परन्तु रंगीराय को मुझे देदो।

नटनी ने कहाः-रंगीराय मेरी बुद्धिमानी और प्रशंसा का प्रमाण पात्र है। जबतक कोई ऐसा बुद्धिमान जो मुझे कायल कर सके नहीं मिलेगा तब तक मैं रंगीराय को अलग नहीं करूंगी।

यह सुन कर राजकुमारी चुप रह गई। और नटनी भी रंगीराय को लेकर चली गई।

इसके कुछ वर्षों उपरान्त एक दिन फिर साधु मंडली एकत्र हुई और भजन कीर्तन होने लगा। मंडली में राजकुमारी और नटनी भी थीं। सबलोग भजन गाने लगे राजकुमारी ने भी दुतारा उठाया और एक सुन्दर, राग छेड़ दिया। सब लोग प्रेमावेश में भर कर उन्मत्त होगये। रंगीराय भी उन्मत्त होकर नाचने लगा सब लोगों की विचित्र दशा थी। नटनी पर भी उसका प्रभाव पड़ा। वह उठी और रंगीराय को लाकर राजकुमी के पास बिठा दिया और बोली कि इस बच्चे को आपके अर्पण करती हूं, कृपा कर स्वीकार कीजिये और जो कुछ धन द्रव्य मेरे पास है वह भी लीजिये। सब उसके ऊपर निछावर है।

यह देख कर सब लोग दंग रह गये। रंगीराय भी उठ कर खड़ा हो गया और बोला।

महारानी जी! मेरा शरीर (नटनी की ओर संकेत करके) इस माता ने कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द को अर्पण कर दिया है। केवल प्राण रह गये हैं वह मैं आज अपर्ण किये देता हूं। क्योंकि पिताजी को मुझे अपने घर में रखने का अब कोई अधिकार नहीं है। यह कह कर वह गाने लगाः-

तेरे ऊपर तन मन वारूं॥
ममता माया साथ न राखूं, जीव प्रान तज डारूं।
मन में बसी मेरे, तेरी मूरतिया उघरे नयन निहारूं॥
कृष्णचन्द्र का निस दिन सुमरन, आंपा आप बिसारूं।
तन में विरह अग्नि बहु व्यापी, कामक्रोधमद जारूं॥

वह गाता जाता था और उसके नेत्रों से आंसू बहते जाते थे। भजन कीर्तन क्या था एक नाटक का तमाशा था। सब आनन्द में मग्न थे। किसी को किसी की सुधि नहीं थी। किसी को मालूम नहीं था कि अब कौनसा दृश्य दिखाई देगा और कौनसा परदा गिरेगा।

इतने में रंगीराय के मुँह से अन्त की यह कड़ीः-

तेरे ऊपर तन मन वारूं॥

निकली और वह 'हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हरे! हरे! की ध्वनि करता हुआ धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। हृदय की धड़कन बन्द हो गई। आखें चक्कर खाने लगी। ओष्ठों पर मुसकराहट छागई और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

इस प्रकार रंगीराय ने जो कुछ कहा वह कर दिखाया। तुम धन्य हो रंगीराय!

विट्ठलदास जी पर इसका क्या प्रभाव पड़ा

इसका कहीं जिकर नहीं है। परन्तु यह सच है कि इस दृश्य को देख कर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई होगी।

धन्य है वे माता पिता! जिस की कोख से ऐसे परम भक्त उत्पन्न होते हैं और धन्य है वे लोग! जिनको भगवान् कृष्णचन्द्र जी के चरणों में ऐसी प्रीति और प्रतीत होती है।

हे प्रभो! हमको भी ऐसी ही भक्ति दो जिससे हम सब कुछ अर्पण कर देवें और अपने आपको बिलकुल भूल जावें। रात दिन तुम्हारा ही स्मरण करते रहें।

बोलो! आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावन विहारी की जय! जय! जय!

भक्ताञ्जलि।

[ले० श्री धर्मदत्त जी विद्यार्थी]

नाथ! तू जानता है कि मैं इस संकुचित शरीर में समा नहीं सकता अपितु! तू ने मुझे इस बन्धन में खूब जकड़ रखा है। तू ने चाहा कि मैं पाषाण के पाटों में परिमित रहूं, परन्तु अप्राप्य! मैं उनमें से भी प्रयत्न करके निकल आया। तू ने यह सोचा कि बीज के दो भागों के मध्य में मुझे बन्द कर दिया जाए, मगर मैं! उससे भी सुपल्लवित अंकुर के रूप में स्फुटित हो गया। तू ने विचारा कि मृग के मोहक नेत्र-युगल में मुझे छुपा दिया जाय, मगर मजा यह कि मैं वहां से भी चञ्चल अपांगों के स्वरूप में आकर स्वतन्त्र हो गया। प्रेमी और प्रियतम के प्यारे! कपोलों के मध्य में मुझे परिमित करना चाहा लेकिन तुझे इतना विचार न था कि मैं इनके मध्य से प्रेम के रूप में निकल कर स्वतन्त्र हो जाऊंगा। नाथ! तू जानता है कि जब मैं समय, स्थान और ग्राम के बन्धन में बन्ध कर नहीं रह सकता तो मैं क्यों कर इसी जीवन की संकुचित सीमा में समा सकता हूं?

अगर भ्रम जगत् में न होता तो मेरे शांति प्रद तथा प्रेम-पूरित संगीतों को कौन सुनता? तेरे इस आतिशय पर मैं सगर्व हूं कि मैं ही भ्रमर का जीवनाधार हूं, अगर मधुकर न होता तो संसार के लिये मेरा अस्तित्व व्यर्थ होता। मैं जब मुस्कराता हूं तो वह अपने आत्मा का पवित्र सन्देह गुप्त रीति से मुझ तक पहुंचाता है। अगर मैं मुरझा जाऊं तो वह उसको अपने लिये शान्तिप्रद समझ कर मुझ से दूर भागता है। मेरा सम्पूर्ण रस चूस कर जरा भी अपने पास नहीं रखता अपितु उदार-चित्त होकर लोगों में विभक्त कर देता है।

मेरे चरणों से उड़ने वाला मिट्टी का बवूला ही मुझ को घेर कर तेरे मधुर मुख के दर्शन में बाधक बन रहा है। मेर हस्त कङ्कण की झंकारें प्रसन्न वदन होकर तेरी स्मृति को समेट रही हैं। मैंने तुझ से पूछा नहीं कि किसी तरह रज को रगड़ लगाए बिना चलूं और तू ने मुझ से यह बात गुप्त रखी कि किसी तरह बिना कंकण के नाद के आरती की जाय। रज समूह और कंकण की झंकारें मेरे शान्त हृदय में व्याकुलता की तरंगें उत्पन्न कर रही हैं। नाथ! इस दशा में मेरी सहायता करके मुझे निष्काम मार्ग पर चलना सिखाओ!

नाथ! जब तक इन नेत्रों में तेरे दर्शन के योग्य दृष्टि उत्पन्न न हो, उस समय तक तू सुख दुःख की अश्रुधारा को सरिता का स्वरूप न दे। जब तक इन कर्णों में तेरे प्रेम के संगीत सुनने की

सामर्थ्य न हो उस समय तक तू कर्ण-कटु शब्दों को सुनने की सामर्थ्य न दे। जब तक इस रसना से तेरे पवित्र स्तोत्रों का पाठ न हो तब तक तू मेरे हृदय में अनिर्वचनीय शक्ति की तरंगों के तूफान को न उठा। जब तक पाद-युगल में तेरे समीप पहुंचने की शक्ति न हो तो दूसरी जगह चलने की सामर्थ्य को नष्ट करदे।

मेरे दुर्भाग्य ने मुझ को एक दिन भी तेरा सुमरन नहीं करने दिया। मेरी अचिन्तता ने मुझ को तेरी स्मृति से हर समय वञ्चित रखा। परन्तु तेरा प्रेम कितना विस्तृत है और असीम है मेरी इन अयोग्यताओं के होते हुए भी तूने अपना प्रेम बराबर बनाए रखा। उषाकाल के द्वारा तू मुझ तक अपना सन्देश पहुंचाता रहा है। हंस मुख फूलों को मेरे समीप दूत बनाकर और मेरी परीक्षा लेने के लिये हृदय के बिना ही सर्वदा झांकझांक कर देख रहा है।

जीवन का आरम्भ फूल की कली के समान है परन्तु तेरी स्मृति से वह पुण्य विकसित होनेपर अत्यन्त शोभा दिखाने लगा। मधुकर के बहुत कहने सुनने पर उसने अपना थोड़ा सा आस्वाद दिया। उषाकाल की वायु ने प्रार्थना की और उसको अपनी कुछ सुगन्ध से सुवासित करके भेजा। आज इसकी पङ्खुड़ियां एक के बाद एक झड़ रही हैं उसके पास अब कोई वस्तु शेष नहीं रही जो दूसरों की भेंट कर सके। उसने समझा कि अपने को अपने में ही प्रविष्ट करके नूतन फल के रूप में तेरे चरणारविन्दों में उपस्थित होऊं।

नाथ! इसको स्वीकार करना तेरा कर्तव्य है।

वासना

गतांक से आगे।

[ले० श्री महात्मा राम]

पूर्वोक्त मलिन वासनाओं की निवृत्ति वसिष्ठादि मुनियो द्वारा कहे हुये उपायों के अभ्यास करने से तथा शुद्ध वासना के उदय होने से होती है।

वह उपाय ये हैं नित्य अनित्य वस्तु का विवेक, विषयों में दोषों का दर्शन, महात्माजनों का सत्संग, विषयी पामरजनों के संग का त्याग, मैत्री करुणादिक विरोधी वासना की उत्पत्ति इत्यादिक उपायों से मलिन वासनाओं की निवृत्ति होती है।

उपरोक्त उपायों से अन्तःकरण में मलिन वासनाओं की उत्पत्ति न होने देना इसी को वासना क्षय का अभ्यास कहते हैं।

दृश्यस्य संभव बोधेन रागद्वेषादि तानवे।
रतिर्नवोदितायातु बोधाभ्यासं विदुः परम्॥

यह दृश्यमान् सर्व प्रपंच अधिष्ठान आत्मा से भिन्न नहीं है ऐसा जो दृश्यप्रपंच के असंभव का बोध है उस बोध से विषयों के अभाव होने पर राग द्वेषादि रूप वासना के निवृत्त होने से इस पुरुष की अपने आत्मस्वरूपानन्द के अनुभव में दृढ़ प्रीति का उत्पन्न होना विद्वानों ने वासना क्षय का अभ्यास कहा है।

असंग व्यवहारित्वाद्वभावन वर्जनात्।
शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते॥

मैं असंग हूं मुझे किसी व्यवहार का लेप नहीं होता इस प्रकार की वृत्तियों को प्रवाह रूप व्यवहार के निरंतर अभ्यास करने से दूसरी वासना प्रवृत्त नहीं होती अथवा प्रपंच के स्मरण का जो सर्वथा त्याग कर देना है इस से भी वासना नहीं

होती और निरन्तर अपने शरीर के नाश का दर्शन करने से भी वासना उत्पन्न नहीं होती।

मस्तकस्थामिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः।
आहारेऽपि न रोचेत किमुतान्याविभूतयः॥

अपने सिर के ऊपर घूमती हुई मृत्यु को जो कदाचित यह पुरुष देखे तो इसको भोजन भी प्रिय नहीं लगेगा तब अन्य पदार्थों की तो बात ही क्या है। इस पर एक दृष्टान्त है।

कोई एक महात्मा निवृत्त चित्त वाले, कृतकार्य, वस्त्र रहित, दिगम्बर वेष, निर्जन स्थान में एक वृक्ष की मूल में बैठे थे। दैवयोग से उसी जगह उस देश का अधिपति राजा भी आ पहुंचा। राजा के साथ दूसरा एक मंत्री था। इन दोनों ने वृक्षके मूल स्थान में महात्मा को बैठे देखा और आश्चर्य किया कि यहां इस भयानक बन में ये महात्मा आज हम को अचानक ही मिले हैं। यह हमारे बड़े सौभाग्य की बात है, चलो कुछ समय तक इनके पास ठहरें। ऐसा विचार राजा और मंत्री दोनों महात्मा के पास गये और प्रणाम किया पश्चात् महात्मा की आज्ञा से बैठ गये कुछ समय तक महात्मा का उपदेश सुनते रहे पश्चात् जब राजा का चलने का विचार हुआ तब राजा ने उन महात्मा से हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक यह निवेदन किया कि महाराज! मेरी इच्छा है कि मैं आपके वास्ते एक कुटी बनाऊं ताकि वर्षा आदि से आपको तकलीफ न हो। यह बात सुनकर महात्मा ने कहा कि राजन! हमको कुटी की कोई जरूरत नहीं है हम इसी प्रकार सुखी हैं। राजा ने आग्रह किया तब महात्मा ने कहा कि राजन! जिसको कुछ दिन जीने की आशा है उसे कुटी की जरूरत है और जिसको मौत सिर पर खड़ी दीख रही है उसको कुटी बनाने की जरूरत नहीं ऐसी अनेक युक्तियों से समझाने पर भी राजा का आग्रह बना ही रहा राजाने महात्मा को कहा कि महाराज! आपको कोई तकलीफ न होगी जब तक आप चाहें तब तक रहें हैं। महात्मा ने कहा कि राजन! तुम जो हमारे लिये कुटी बनानी चाहते हो हमको यह ही तकलीफ है। जब तुम बना दोगे तब तो क्या जाने कितनी तकलीफ होगी। महात्मा की ऐसी बातों को सुन कर राजा बड़ा हैरान हुआ और सोचने लगा कि देखो ऐसा दुनिया में कौन आदमी होगा जो अपने आराम की जगह न चाहता हो। एक दिन के लिये भी अनेक प्रबन्ध करने होते हैं तमाम जिन्दगी के लिये तो मनुष्य को बहुत कुछ करना चाहिये। इस प्रकार राजा के मनमें अनेक खयालों की लहरें उठ रही थीं, राजा सोच में पड़ रहा था ऐसी हालत में राजा को देख कर महात्मा ने कहा कि राजन! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि आप चाहें तो हम आप को प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं कि अपनी मौत सिर पर खड़ी देखने वाले पुरुष को भोजन तक अच्छा नहीं लगता। महात्मा की यह बात सुन कर राजा ने कहा कि महाराज! मैं इस बात को प्रत्यक्ष में देखना चाहता हूं।

तब महात्मा ने कहा कि अच्छा तुम किसी गरीब के लड़के को हमारे पास लेकर आओ और जो कुछ हम कहें सो करो। राजा बहुत अच्छा कर कर चल दिया। दूसरे दिन किसी नादारिस बच्चे को लेकर महात्मा के पास गया और प्रणाम करके कहा कि यह लड़का आगया है। तब महात्मा ने कहा कि अच्छा हमारी आज्ञा से इस लड़के को तुम अपने राज्य में से एक देश का राजा बनादो और इसको वहां का सब अधिकार देदो। राजाने वैसा ही किया, लड़के को किसी देश का राज्य देकर वहां का अधिकारी बना दिया। उस लड़के ने राज्य के

सुख का खूब अनुभव किया और अपने को वहां का राजा मान लिया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब एक दिन महात्मा ने राजा से कहा कि अब तुम उस लड़के को हमारे पास बुलाओ। तब राजा ने उसको बुला लिया और महात्मा के पास लेकर आया। लड़का बहुत खुशी में था कि अब के मुझे कुछ और भी लाभ होगा, राजाने कहा कि महाराज! यह वही लड़का है जिसको आपकी आज्ञा से राजा बनाया गया है अब इसको क्या आज्ञा है। महात्मा ने कहा राजन्! आज प्रातःकाल इस लड़के को फांसी दिलादो राजाने बहुत अच्छा कहा। तब लड़के ने सोचा कि राजा ने इन की आज्ञा से मुझे राज्य दे दिया है तो फाँसी भी जरूर ही होगी। बस उसको तो उसी समय से अपनी मौत सिर पर घूमती हुई नजर आने लगी। महात्मा ने राजा को अपने पास रख कर और सब को कह दिया कि तुम जाओ। पश्चात राजा से महात्मा ने कहा कि इस लड़के को तुम आज रात्रि में देखो यह क्या करता है इसके पास सब प्रकार के पदार्थ और स्त्रियाँ इसकी सेवा में छोड़ दो और इसके पास नृत्य तथा गायन कराओ। जो भी मन को प्रसन्न करने वाली बातें हैं वह सब करो और सवेरे फांसी से पहले हमारे पास आओ हम से पूछ कर फांसी देना। राजाने नगर में आकर वैसा ही किया जो महात्मा ने बताया था। उस लड़के का चमकीला चेहरा पीला पड़ गया, होंठ सूक गये, थम २ के श्वास आने लगी, खाना पीना तो अलग रहा किसी की तरफ नजर उठाकर भी नहीं देखता था, अनेक प्यारे बान्धव सेवा में थे। नाच गायन भी होता था परन्तु उसे तो वही श्मशान दीखता था, सवेरा होना दुष्वार हो गया, एक २ पल एक वर्ष के समान था। जैसे तैसे सवेरा हुआ, राजा महात्मा के पास आया और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया तब महात्मा ने राजा से कहा कि राजन! तुमने देखा इस लड़के को अपनी मौत सिर पर खड़ी दीखती है इसलिये दुनिया की कोई भी चीज इसको नहीं लुभाती। इसको सुन्दर मकानों से क्या, नाच तमासों से क्या, इसको शरीर के किसी भी सुख से क्या प्रयोजन है? यह तो सब से विदा हो चुका, इसके लिये तुम जो कुछ करोगे सब निरर्थक है इसी प्रकार हमारे लिये भी तुम्हारा कुटी बनाना निरर्थक है। हे राजन्! दुनिया में बहुत दिन जीवें तब क्या है और थोड़े दिन जीवें तब क्या है यह देह तो एक दिन अवश्य ही नष्ट होगा इस के लिये जितनी ज्यादा उपाधी बढ़ाई जायगी उतना ही ज्यादा क्लेश होगा कम उपाधी होगी तो क्लेश भी कम होगा अब तुम जाओ उस लड़के को कुछ धन देकर छोड़ दो और भगवान् का भजन करो इस प्रकार महात्मा के वचन सुन कर राजा को बहुत आनन्द हुआ और हृदय में वैराग्य का संचार हुआ, सब संसार दुःख रूप नजर आने लगा सांख्य शास्त्र में भी लिखा है कि संसार दुःख रूप है:-

'सर्वं दुःखमेव विवेकिनः'।

विवेकी पुरुष की दृष्टी में यह सर्व प्रपंच दुःखमय ही है।

दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्यु पुनः पुनः।
संसार मंडल दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः॥

जन्म भी दुःख है, जरा (बुढापा) भी दुःख रूप है, पुनः पुनः मरण भी दुःख रूप है बहुत क्या कहिये यह समस्त संसार ही दुःख रूप है जिस संसार मंडल में यह सर्वअज्ञानी जीव बारम्बार जन्म मरणादिक तापों से तपाये जाते हैं। इस प्रकार आत्मा से भिन्न सर्व जगत् को दुःख रूप करके चिन्तन करने से भी राग द्वेषादि मलिन वासना

निवृत्त होती है।

'निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरुह्य योगोपि निपात्यतेऽधः, संगेन योगी किमुताल्प सिद्धिः'॥

विषयासक्तपुरुषों के संग का परित्याग रूप निःसंगता ही संन्यासियों की मुक्ति के प्राप्ति का मार्ग है।

कारण यह है कि जब विषयासक्त पुरुषों के संग से रागद्वेषादि मलिन वासना की उत्पत्ति होकर योग में आरूढ़ हुआ पुरुष का भी अधःपतन हो जाता है तब योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले पुरुष का तो क्यों नहीं अधः पतन होगा।

इस वास्ते तत्वज्ञ पुरुष श्रेष्ठ पुरुषों के धर्म को दूषित नहीं करता हुआ इस प्रकार से लोक में विचरे जैसे यह विषयासक्त पुरुष अपमान करते हुए संगति को प्राप्त न होवे। महाभारत में भी यही कहा है:-

'अहेरिव गणाद्भीतः सम्मानान्नरकादिव।
कुणपादिव चस्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जैसे देहाभिमानी पुरुष सर्प से डरता है तैसे ही विद्वान पुरुष लोकों के संग से डरता है जैसे लोक नाग से डरते हैं तैसे जो सन्मान से डरता है और जैसे लोग मृतक शरीर से डरते और ग्लानि करते हैं तैसे जो विद्वान् पुरुष स्त्री जनों से डरता है विद्वान पुरुष को देवता ब्राह्मण अर्थात् उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

श्रीमद्भागवत् में कहा है कि मुमुक्षु पुरुष विषयासक्त स्त्री पुरुषों के संग को सर्व प्रकार से त्याग करे तथा चक्षुआदिक एकादश इन्द्रियों को बाह्य रूपादिक विषयों से निग्रह करै और एकान्त देश में एकाकी स्थित होकर अपरिछिन्न ईश्वर में चित्त को जोड़े अर्थात् निरन्तर ब्रह्म का ध्यान करै और जो कदाचित् अपने स्वभाव से चंचल चित्त परब्रह्म में न जुड़े तो जो पुरुष परमेश्वर में प्रीति वाले हैं उन महात्माओं का सत्संग करे।

'महत्सेवांद्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारंयोषितां संगि संगम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवोये'॥

महत्पुरुषों के सेवा को विद्वान् पुरुष मुक्ति का साधन कहते हैं और स्त्रियों के संगी पुरुषों को संग नरक का साधन कहते हैं महत्पुरुष कौन हैं। जिनका समचित्त है अर्थात् सम ब्रह्म में स्थित है अथवा शत्रु मित्र में समचित्त वाले हैं तथा अतिशय करके शान्त स्वभाव वाले हैं तथा क्रोध से रहित हैं, सुहृद हैं अर्थात् अनुपकारी पर भी उपकार करने वाले हैं अर्थात् शम दमादि साधन संपन्न हैं ऐसे गुणों वाले पुरुष ही महत्पुरुष कहे जाते हैं। ऐसे महत्पुरुषों का श्रधा भक्ति पूर्वक संग भी मलिन वासना की निवृत्ति द्वारा मोक्ष का ही साधन है उन महात्माओं के संग से स्वभाविक ही चित्त परब्रह्म के ध्यान में जुड़ जाता है। ऐसे ध्यान में जुड़े हुए चित्त वाले पुरुष को मुक्ति रूप फल की प्राप्ति होती है।

अपूर्ण

भजन

ऊधो मोहि ब्रज विसरत नाहीं।
बृन्दाबन गोकुल तन आवत सघन विपन की छांहीं।
प्रात समय माता,यशुमति अरु नन्द देखि सुख पावत
माखन रोटी दही कलेवा अति हित साथ खवावत।
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हंसत सिरात
सूरदास धनि २ ब्रजवासी जिनसों हंसत ब्रजनाथ।

(२)

जापर दीनानाथ ढरे।
सोई कुलीन बड़ो सुन्दर सोई जिनपर कृपा करै।
राजा कौन बड़ो रावण ते गर्वहि गर्व गरे॥

रोकत कौन सुदामा हूते आपु समान करे।
पतिव्रत कौन अधिक सीता ते जन्म वियोग भरे।
अधिक करूप कौन कुबिजा ते हरिपति पाई बरे।
योगी कौन बड़ो शंकर ते ताको काम छरे॥
कौन विरक्त अधिक नारद सों निश दिन भ्रमत फिरे
अधम सुकौन अजामिल हूते यम जहं जात डरे॥
सूरदास भगवन्त भजन बिन फिर २ जठर जरे।

(३)

गोविन्द प्रीति सब की मानत।
जेहि २ भाव करी जिन सेवा अन्तरगत की जानत।
शबरी कटुक बेर तजि मीठे भाखि गोद भरि लाई।
झूंठे की कछु शंक न मानी भक्ष किये सत भाई॥
सन्तन भक्त मित्र हितकारी श्याम विदुर के आए।
असि रस बाढ्यो प्रीति निरन्तर साग मगन ह्वै खाये
कौरव काज चले ऋषि शापन साग पत्र ही अघाये
सूरदास करुणानिधान प्रभु युग २ भक्त बढ़ाये।

(४)

जाको हरि अंगीकार कियो।
ताके कोटि विघ्न हरिहरकै अभय प्रताप दियो॥
दुर्वासा ऋषि अम्बरीष सतायो सो हरि शरण गयो।
प्रतिज्ञा राखी मनमोहन फिरि तापै पठयो॥
निकसि खंभ ते नाथ निरन्तर अपुनो राखि लियो।
बहु शासना दई प्रहलादहिं ताहि निशंक कियो॥
मृतक भये सब सखा जिवाये बिस जल जाई पियो।
सूरदास प्रभु भक्तवछल हैं उपमा कौन कियो।

(५)

हरि तेरो भजन कियो न जाई।
कहा करूं तेरी प्रबल माया लहर देति बहाई।
जबै जाऊं साधु संगति कछुक मन ठहराई।
ज्यों गयन्द अन्हाई सरिता बहुरि बहै सुभाई॥
वेस धरि २ हरयो परधन साधु साधु कहाई।
जैसे नटुवा लोभ कारण करत स्वांग बनाई॥
करौं यतन न भजौं तुमको कछुक मन उपजाई।
सूर हरि की प्रबल माया देति मोंहि लुभाई॥

(६)

कितक दिन हरि सुमिरन बिन खोये।
परनिंदा रसना के रस में अपने पर तर बोये॥
तेल लगाय कियो तन मर्दन बसतर मल २ धोये।
तिलक लगाय चले बन स्वामी विषयन के संग जोये॥
काल बली ते सब जग कांप्यो ब्रह्मादिक मुनि रोये।
सूर अधम की कहो कौन गति उदर भरे भर सोये॥

(७)

मेरो मन मतिहीन गुसाईं।
सब सुख निधिपद कमल छांडि भ्रम करत श्वान की नाईं
फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अज्ञान।
तिहिं लालच कबहूं कैसे हूं तृपति न पावत प्रान॥
जहं २ जात तहीं भय त्रासत आस लकुटी पय मान।
कौन २ कारण कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान॥
तुम सर्वज्ञ सकल विधि पूर्ण अखिल भुवन निज नाथ
तिन्हें छाँड़ि यह सूर महाशठ भ्रमत भ्रमनि के साथ

(८)

कीजै प्रभु अपने विरद की लाज।
महापतित कबहूं नहिं आयो नेकु तुम्हारे काज॥
माया सबल धाम धन बनिता बाँधौं हौं इहि साज।
देखत सुनत सबै जानत हौं तऊ न आयो बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे श्रवणनि सुनि अवाज
दई न जात पार उतराई चाहत चढ़न जहाज॥
लीजै पार उतारि सूरि को महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु तुमसों सदा गरीब निवाज॥